हरे कृष्ण

श्रीमद् भगवत गीता

अध्याय 18

|| संन्यास की सिद्धि ||

designed by
DigitalWebdia | bhaktiprasad.in

1.

अर्जुन उवाच |

सन्न्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् |

त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन || 18.1 ||

bhaktiprasad.in

अर्जुन ने कहा - हे महाबाहु! मैं त्याग का उद्देश्य जानने का इच्छुक हूँ और हे केशिनिषूदन, हे हृषिकेश! मैं त्यागमय जीवन (संन्यास आश्रम) का भी उद्देश्य जानना चाहता हूँ ।

Arjuna said, O mighty-armed one, I wish to understand the purpose of renunciation [tyāga] and of the renounced order of life [sannyāsa], O killer of the Keśī demon, Hrsīkeśa.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

वास्तव में भगवद्गीता सत्रह अध्यायों में ही समाप्त हो जाती है । अठारहवाँ अध्याय तो पूर्वविवेचित विषयों का पूरक संक्षेप है । प्रत्येक अध्याय में भगवान् बल देकर कहते हैं कि भगवान् की सेवा ही जीवन का चरम लक्ष्य है । इसी विषय को इस अठारहवें अध्याय में ज्ञान के परम गुह्य मार्ग के रूप में संक्षेप में बताया गया है । प्रथम छह अध्यायों में भक्तियोग पर बल दिया गया - योगिनामपि सर्वेषाम्...-'समस्त योगियों में से जो योगी अपने अन्तर में सदैव मेरा चिन्तन करता है, वह सर्वश्रेष्ठ है ।' अगले छह अध्यायों में शुद्ध भक्ति, उसकी प्रकृति तथा कार्यों का विवेचन है । अन्त के छह अध्यायों में ज्ञान, वैराग्य अपरा तथा परा प्रकृति के कार्यों और भक्ति का वर्णन है । निष्कर्ष रूप में यह कहा गया है कि सारे कार्यों को परमेश्वर से युक्त होना चाहिए , जो ॐ तत् सत् शब्दों से प्रकट होता है और ये शब्द परम पुरुष विष्णु के सूचक हैं । भगवद्गीता के तृतीय खण्ड से यही प्रकट होता है कि भक्ति ही एकमात्र जीवन का चरम लक्ष्य है । पूर्ववर्ती आचार्यों तथा ब्रह्मसूत्र या वेदान्त-सूत्र का उद्धरण देकर इसकी स्थापना की गई है । कुछ निर्विशेषवादी वेदान्त सूत्र के ज्ञान पर अपना एकाधिकार जनाते हैं, लेकिन वास्तव में वेदान्त सूत्र भक्ति को समझने के लिए हैं, क्योंकि ब्रह्मसूत्र के रचियता (प्रणेता) साक्षात् भगवान् हैं और वे ही इसके ज्ञाता हैं । इसका वर्णन पन्द्रहवें अध्याय में हुआ है । प्रत्येक शास्त्र, प्रत्येक वेद का लक्ष्य भक्ति है । भगवद्गीता में इसी की व्याख्या है ।

तात्पर्य

जिस प्रकार द्वितीय अध्याय में सम्पूर्ण विषयवस्तु की प्रस्तावना (सार) का वर्णन है , उसी प्रकार अठारहवें अध्याय में सारे उपदेश का सारांश दिया गया है । इसमें त्याग (वैराग्य) तथा त्रिगुणातीत दिव्य पथ की प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य बताया गया है । अर्जुन भगवद्गीता के दो विषयों का स्पष्ट अन्तर जानने का इच्छुक है-ये हैं, त्याग तथा संन्यास । अतएव वह इन दोनों शब्दों के अर्थ की जिज्ञासा कर रहा है ।

इस श्लोक में परमेश्वर कोसम्बोधित करने के लिए प्रयुक्त हृषीकेश तथा केशिनिषूदन - ये दो शब्द महत्त्वपूर्ण हैं । हृषीकेश कृष्ण हैं, समस्त इन्द्रियों के स्वामी, जो हमें मानसिक शान्ति प्राप्त करने में सहायक बनते हैं । अर्जुन उनसे प्रार्थना करता है कि वे सभी बातों को इस तरह संक्षिप्त कर दें, जिससे वह समभाव में स्थिर रहे । फिर भी उसके मन में कुछ संशय हैं और ये संशय असुरों के समान होते हैं । अतएव वह कृष्ण को केशि-निषूदन कहकर सम्बोधित करता है । केशी अत्यन्त दुर्जेय असुर था, जिसका वध कृष्ण ने किया था । अब अर्जुन चाहता है कि वे उसके संशय रूपी असुर का वध करें ।

2.

श्रीभगवानुवाच |
काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः |
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः || 18.2 ||

भगवान् ने कहा-भौतिक इच्छा पर आधारित कर्मों के परित्याग को विद्वान लोग संन्यास कहते हैं और समस्त कर्मों के फल-त्याग को बुद्धिमान लोग त्याग कहते हैं ।

The Supreme Lord said, To give up the results of all activities is called renunciation [tyāga] by the wise. And that state is called the renounced order of life [sannyāsa] by great learned men.

bhaktiprasad.in
Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

कर्मफल की आकांक्षा से किये गये कर्म का त्याग करना चाहिए । यही भगवद्गीता का उपदेश है । लेकिन जिन कर्मों से उच्च आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हो, उनका परित्याग नहीं करना चाहिए । अगले श्लोकों से यह स्पष्ट हो जायगा । वैदिक साहित्य में किसी विशेष उद्देश्य से यज्ञ सम्पन्न करने की अनेक विधियों का उल्लेख है । कुछ यज्ञ ऐसे हैं, जो अच्छी सन्तान प्राप्त करने के लिए या स्वर्ग की प्राप्ति के लिए किये जाते हैं, लेकिन जो यज्ञ इच्छाओं के वशीभूत हों, उनको बन्द करना चाहिए । परन्तु आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नति या हृदय की शुद्धि के लिए किये जाने वाले यज्ञों का परित्याग करना उचित नहीं है ।

3.

bhaktiprasad.in

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः |
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे || 18.3 ||

कुछ विद्वान घोषित करते हैं कि समस्त प्रकार के सकाम कर्मों को दोषपूर्ण समझ कर त्याग देना चाहिए | किन्तु अन्य विद्वान् मानते हैं कि यज्ञ, दान तथा तपस्या के कर्मों को कभी नहीं त्यागना चाहिए |

Some learned men declare that all kinds of fruitive activities should be given up, but there are yet other sages who maintain that acts of sacrifice, charity and penance should never be abandoned.

Designed by DigitalWebdia.com

3.

तात्पर्य

वैदिक साहित्य में ऐसे अनेक कर्म हैं जिनके विषय में मतभेद है | उदाहरणार्थ, यह कहा जाता है कि यज्ञ में पशु मारा जा सकता है, फिर भी कुछ का मत है कि पशुहत्या पूर्णतया निषिद्ध है | यद्यपि वैदिक साहित्य में पशु-वध की संस्तुति हुई है, लेकिन पशु को मारा गया नहीं माना जाता | वह बलि पशु को नवीन जीवन प्रदान करने के लिए होती है | कभी-कभी यज्ञ में मारे गये पशु को नवीन पशु-जीवन प्राप्त होता है, तो कभी वह पशु तत्क्षण मनुष्य योनि को प्राप्त हो जाता है | लेकिन इस सम्बन्ध में मनीषियों में मतभेद हैं | कुछ का कहना है कि पशुहत्या नहीं की जानी चाहिए और कुछ कहते हैं कि विशेष यज्ञ (बलि) के लिए यह शुभ है | अब यज्ञ-कर्म विषयक विभिन्न मतों का स्पष्टीकरण भगवान् स्वयं कर रहे हैं |

4.

निश्चयं श्रृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम |
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः || 18.4 ||

हे भरतश्रेष्ठ ! अब त्याग के विषय में मेरा निर्णय सुनो । हे नरशार्दूल ! शास्त्रों में त्याग तीन तरह का बताया गया है ।

O best of the Bhāratas, hear from Me now about renunciation. O tiger among men, there are three kinds of renunciation declared in the scriptures.

bhaktiprasad.in

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

यद्यपि त्याग के विषय में विभिन्न प्रकार के मत हैं, लेकिन परम पुरुष श्रीकृष्ण अपना निर्णय दे रहे हैं, जिसे अन्तिम माना जाना चाहिए । निस्सन्देह, सारे वेद भगवान् द्वारा प्रदत्त विभिन्न विधान (नियम) हैं । यहाँ पर भगवान् साक्षात् उपस्थित हैं, अतएव उनके वचनों को अन्तिम मान लेना चाहिए । भगवान् कहते हैं कि भौतिक प्रकृति के तीन गुणों में से जिस गुण में त्याग किया जाता है, उसी के अनुसार त्याग का प्रकार समझना चाहिए ।

5.

bhaktiprasad.in

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् |
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् || 18.5 ||

यज्ञ, दान तथा तपस्या के कर्मों का कभी परित्याग नहीं करना चाहिए, उन्हें अवश्य सम्पन्न करना चाहिए । निस्सन्देह यज्ञ, दान तथा तपस्या महात्माओं को भी शुद्ध बनाते हैं ।

Acts of sacrifice, charity and penance are not to be given up but should be performed. Indeed, sacrifice, charity and penance purify even the great souls.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

योगी को चाहिए कि मानव समाज की उन्नति के लिए कर्म करे । मनुष्य को आध्यात्मिक जीवन तक ऊपर उठाने के लिए अनेक संस्कार (पवित्र कर्म) हैं । उदाहरणार्थ, विवाहोत्सव एक यज्ञ माना जाता है । यह विवाह-यज्ञ कहलाता है । क्या एक संन्यासी, जिसने अपना पारिवारिक सम्बन्ध त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लिया है, विवाहोत्सव को प्रोत्साहन दे? भगवान् कहते हैं कि कोई भी यज्ञ जो मानव कल्याण के लिए हो, उसका कभी भी परित्याग न करे । विवाह-यज्ञ मानव मन को संयमित करने के लिए है, जिससे आध्यात्मिक प्राप्ति के लिए वह शान्त बन सके । संन्यासी को भी चाहिए कि इस विवाह-यज्ञ की संस्तुति अधिकांश मनुष्यों के लिए करे । संन्यासियों को चाहिए कि स्त्रियों का संग न करें, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि जो व्यक्ति अभी जीवन की निम्न अवस्थाओं में है, अर्थात् जो तरुण है, वह विवाह-यज्ञ में पत्नी न स्वीकार करे । सारे यज्ञ परमेश्वर की प्राप्ति के लिए हैं । अतएव निम्नतर अवस्थाओं में यज्ञों का परित्याग नहीं करना चाहिए । इसी प्रकार दान हृदय की शुद्धि (संस्कार) के लिए है । यदि दान सुपात्र को दिया जाता है, तो इससे आध्यात्मिक जीवन में प्रगति होती है, जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है ।

6.

bhaktiprasad.in

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च |
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् || 18.6 ||

इन सारे कार्यों को किसी प्रकार की आसक्ति या फल की आशा के बिना सम्पन्न करना चाहिए । हे पृथापुत्र! इन्हें कर्तव्य मानकर सम्पन्न किया जाना चाहिए । यही मेरा अन्तिम मत है ।

All these activities should be performed without any expectation of result. They should be performed as a matter of duty, O son of P□thā. That is My final opinion.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

यद्यपि सारे यज्ञ शुद्ध करने वाले हैं, लेकिन मनुष्य को ऐसे कार्यों से किसी फल की इच्छा नहीं करनी चाहिए । दूसरे शब्दों में, जीवन में जीतने सारे यज्ञ भौतिक उन्नति के लिए हैं, उनका परित्याग करना चाहिए । लेकिन जिन यज्ञों से मनुष्य का अस्तित्व शुद्ध हो और जो आध्यात्मिक स्तर तक उठाने वाले हों, उनको कभी बन्द नहीं करना चाहिए । जिस किसी वस्तु से कृष्णभावनामृत तक पहुँचा जा सके, उनको कभी भी बन्द नहीं करना चाहिए । श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है कि जिस कार्य से भगवद्भक्ति का लाभ हो, उसे स्वीकार करना चाहिए । यही धर्म की सर्वोच्च कसौटी है । भगवद्भक्त को ऐसे किसी भी कर्म, यज्ञ या दान को स्वीकार करना चाहिए, जो भगवद्भक्ति करने में सहायक हो ।

7.

नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो नोपपद्यते |
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः || 18.7 ||

निर्दिष्ट कर्तव्यों को कभी नहीं त्यागना चाहिए । यदि कोई मोहवश अपने नियत कर्मों का परित्याग कर देता है, तो ऐसे त्याग को तामसी कहा जाता है ।

Prescribed duties should never be renounced. If, by illusion, one gives up his prescribed duties, such renunciation is said to be in the mode of ignorance.

bhaktiprasad.in

Designed by DigitalWebdia.com

7.

तात्पर्य

जो कार्य भौतिक तुष्टि के लिए किया जाता है, उसे अवश्य ही त्याग दे, लेकिन जिन कार्यों से आध्यात्मिक उन्नति हो, यथा भगवान् के लिए भोजन बनाना, भगवान् को भोग अर्पित करना, फिर प्रसाद ग्रहण करना, उसकी संस्तुति की जाती है । कहा जाता है कि संन्यासी को अपने लिए भोजन नहीं बनाना चाहिए । लेकिन अपने लिए भोजन पकाना भले ही वर्जित हो, परमेश्वर के लिए भोजन पकाना वर्जित नहीं है । इसी प्रकार अपने शिष्य की कृष्णभावनामृत में प्रगति करने में सहायक बनने के लिए संन्यासी विवाह-यज्ञ सम्पन्न करा सकता है । यदि कोई ऐसे कार्यों का परित्याग कर देता है, तो यह समझना चाहिए कि वह तमोगुण के अधीन है ।

8.

bhaktiprasad.in

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् |
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् || 18.8 ||

जो व्यक्ति नियत कर्मों को कष्टप्रद समझ कर या शारीरिक क्लेश के भय से त्याग देता है, उसके लिए कहा जाता है कि उसने यह त्याग रजो गुण में किया है । ऐसा करने से कभी त्याग का उच्च फल प्राप्त नहीं होता ।

Anyone who gives up prescribed duties as troublesome, or out of fear, is said to be in the mode of passion. Such action never leads to the elevation of renunciation.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत को प्राप्त होता है, उसे इस भय से अर्थोपार्जन बन्द नहीं करना चाहिए कि वह सकाम कर्म कर रहा है । यदि कोई कार्य करके कमाये धन को कृष्णभावनामृत में लगाता है, या यदि कोई प्रातःकाल जल्दी उठकर दिव्य कृष्णभावनामृत को अग्रसर करता है, तो उसे चाहिए कि वह डर कर या यह सोचकर कि ऐसे कार्य कष्टप्रद हैं, उन्हें त्यागे नहीं । ऐसा त्याग राजसी होता है । राजसी कर्म का फल सदैव दुखद होता है । यदि कोई व्यक्ति इस भाव से कर्म त्याग करता है, तो उसे त्याग का फल कभी नहीं मिल पाता ।

9.

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन |
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः || 18.9 ||

हे अर्जुन! जब मनुष्य नियत कर्तव्य को करणीय मान कर करता है और समस्त भौतिक संगति तथा फल की आसक्ति को त्याग देता है, तो उसका त्याग सात्त्विक कहलाता है |

But he who performs his prescribed duty only because it ought to be done, and renounces all attachment to the fruit-his renunciation is of the nature of goodness, O Arjuna.

bhaktiprasad.in

Designed by DigitalWebdia.com

9.

तात्पर्य

नियत कर्म इसी मनोभाव से किया जाना चाहिए | मनुष्य को फल के प्रति अनासक्त होकर कर्म करना चाहिए, उसे कर्म के गुणों से विलग हो जाना चाहिए | जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत में रहकर कारखाने में कार्य करता है, वह न तो कारखाने के कार्यों से अपने को जोड़ता है, न ही कारखाने के श्रमिकों से | वह तो मात्र कृष्ण के लिए कार्य करता है | और जब वह इसका फल कृष्ण को अर्पण कर देता है, तो वह दिव्य स्तर पर कार्य करता है |

10.

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते |
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः || 18.10 ||

सतोगुण में स्थित बुद्धिमान त्यागी, जो न तो अशुभ कार्य से घृणा करता है, न शुभकर्म से लिप्त होता है, वह कर्म के विषय में कोई संशय नहीं रखता ।

Those who are situated in the mode of goodness, who neither hate inauspicious work nor are attached to auspicious work, have no doubts about work.

bhaktiprasad.in

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

कृष्णभावनाभावित व्यक्ति न तो किसी व्यक्ति से घृणा करता है, न अपने शरीर को कष्ट देने वाली किसी बात से । वह उपयुक्त स्थान पर तथा उचित समय पर, बिना डरे, अपना कर्तव्य करता है । ऐसे व्यक्ति को, जो अध्यात्म को प्राप्त है,सर्वाधिक बुद्धिमान तथा अपने कर्मों में संशय रहित मानना चाहिए ।

11.

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः |
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते || 18.11 ||

निस्सन्देह किसी भी देहधारी प्राणी के लिए समस्त कर्मों का परित्याग कर पाना असम्भव है । लेकिन जो कर्म फल का परित्याग करता है, वह वास्तव में त्यागी है ।

It is indeed impossible for an embodied being to give up all activities. Therefore it is said that he who renounces the fruits of action is one who has truly renounced.

bhaktiprasad.in

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

भगवद्गीता में कहा गया है कि मनुष्य कभी भी कर्म का त्याग नहीं कर सकता। अतएव जो कृष्ण के लिए कर्म करता है और कर्म फलों को भोगता नहीं तथा जो कृष्ण को सब कुछ अर्पित करता है, वही वास्तविक त्यागी है । अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के अनेक सदस्य हैं, जो अपने अपने कार्यालयों, कारखानों या अन्य स्थानों में कठिन श्रम करते हैं और वे जो कुछ कमाते हैं, उसे संघ को दान दे देते हैं । ऐसे महात्मा व्यक्ति वास्तव में संन्यासी हैं और वे संन्यास में स्थित होते हैं । यहाँ स्पष्ट रूप से बताया गया है कि कर्म फलों का परित्याग किस प्रकार और किस प्रयोजन के लिए किया जाय ।

12.

bhaktiprasad.in

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् |
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् || 18.12 ||

जो त्यागी नहीं है, उसके लिए इच्छित(इष्ट), अनिच्छित (अनिष्ट) तथा मिश्रित - ये तीन प्रकार के कर्मफल मृत्यु के बाद मिलते हैं । लेकिन जो संन्यासी है, उन्हें ऐसे फल का सुख-दुख नहीं भोगना पड़ता ।

For one who is not renounced, the threefold fruits of action-desirable, undesirable and mixed-accrue after death. But those who are in the renounced order of life have no such results to suffer or enjoy.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

जो कृष्णभावनामय व्यक्ति कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध को जानते हुए कर्म करता है, वह सदैव मुक्त रहता है । अतएव उसे मृत्यु के पश्चात् अपने कर्म फलों का सुख-दुख नहीं भोगना पड़ता ।

13-14.

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे |
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् || 18.13 ||

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् |
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् || 18.14 ||

हे महाबाहु अर्जुन ! वेदान्त के अनुसार समस्त कर्मों की पूर्ति के लिए पाँच कारण हैं । अब तुम इन्हें मुझसे सुनो । - 18.13

कर्म का स्थान (शरीर), कर्ता, विभिन्न इन्द्रियाँ, अनेक प्रकार की चेष्टाएँ तथा परमात्मा - ये पाँच कर्म के कारण हैं । - 18.14

O mighty-armed Arjuna, learn from Me of the five factors which bring about the accomplishment of all action. These are declared in sānkhya philosophy to be the place of action, the performer, the senses, the endeavor, and ultimately the Supersoul.

bhaktiprasad.in

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

यहाँ पर प्रश्न पूछा जा सकता है कि चूँकि प्रत्येक कर्म का कुछ न कुछ फल होता है, तो फिर यह कैसे सम्भव है कि कृष्ण भावना मय व्यक्ति को कर्म के फलों का सुख-दुख नहीं भोगना पड़ता? भगवान् वेदान्त दर्शन का उदाहरण यह दिखाने के लिए देते हैं कि यह किस प्रकार सम्भव है । वे कहते हैं कि समस्त कर्मों के पाँच कारण होते हैं । अतएव किसी कर्म में सफलता ले लिए इन पाँचों कारणों पर विचार करना होगा । सांख्य का अर्थ है ज्ञान का आधार स्तम्भ और वेदान्त अग्रणी आचार्यों द्वारा स्वीकृत ज्ञान का चरम आधार स्तम्भ है यहाँ तक कि शंकर भी वेदान्त सूत्र को इसी रूप में स्वीकार करते हैं । अतएव ऐसे शास्त्र की राय ग्रहण करनी चाहिए ।

चरम नियन्त्रण परमात्मा में निहित है । जैसा कि भगवद्गीता में कहा गया है - सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः - वे प्रत्येक व्यक्ति को उसकेपूर्व कर्मों का स्मरण करा कर किसी न किसी कार्य में प्रवृत्त करते रहते हैं । और जो कृष्ण भावना भावित कर्म अन्तर्यामी भगवान् के निर्देशानुसार किये जाते हैं, उनका फल न तो इस जीवन में, न ही मृत्यु के पश्चात् मिलता है ।

तात्पर्य

अधिष्ठानम् शब्द शरीर के लिए आया है । शरीर के भीतर आत्मा कर्म करता है, जिससे कर्म फल होता है । अतएव वह कर्ता कहलाता है । आत्मा ही ज्ञाता तथा कर्ता है, इसका उल्लेख श्रुति में है । एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा (प्रश्न उपनिषद् ४.९) । वेदान्त सूत्र में भी ज्ञोऽतएव (२.३.१८) तथा कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात् (२.३.३३) श्लोकों से इसकी पुष्टि होती है । कर्म के उपकरण इन्द्रियाँ है और आत्मा इन्हीं इन्द्रियों के द्वारा विभिन्न कर्म करता है । प्रत्येक कर्म के लिए पृथक् चेष्ठा होती है । लेकिन सारे कार्यकलाप परमात्मा की इच्छा पर निर्भर करते हैं, जो प्रत्येक हृदय में मित्र रूप में आसीन है । परमेश्वर परम कारण है । अतएव जो इन परिस्थितियों में अन्तर्यामी परमात्मा के निर्देश के अन्तर्गत कृष्णभावनामय होकर कर्म करता है, वह किसी कर्म से बँधता नहीं । जो पूर्ण कृष्णभावनामय हैं, वे अन्ततः अपने कर्मों के लिए उत्तरदायी नहीं होते । सब कुछ परम इच्छा, परमात्मा, भगवान् पर निर्भर है ।

15.

bhaktiprasad.in

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः || 18.15 ||

मनुष्य अपने शरीर, मन या वाणी से जो भी उचित या अनुचित कर्म करता है, वह इन पाँच कारणों के फल स्वरूप होता है ।

Whatever right or wrong action a man performs by body, mind or speech is caused by these five factors.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

इस श्लोक में न्याय्य (उचित) तथा विपरीत (अनुचित) शब्द अत्यन्त महत्त्व पूर्ण हैं । सही कार्य शास्त्रों में निर्दिष्ट निर्देशों के अनुसार किया जाता है और अनुचित कार्य में शास्त्रीय आदेशों की अवहेलना की जाती है । किन्तु जो कर्म किया जाता है, उसकी पूर्णता के लिए पाँच कारणों की आवशयकता पड़ती है ।

16.

तत्रैवं सति कर्तारमात्मनं केवलं तु यः |
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः || 18.16 ||

अतएव जो इन पाँच कारणों को न मानकर अपने आपको ही एकमात्र कर्ता मानता है, वह निश्चय ही बहुत बुद्धिमान नहीं होता और वस्तुओं को सही रूप में नहीं देखता ।

Therefore one who thinks himself the only doer, not considering the five factors, is certainly not very intelligent and cannot see things as they are.

bhaktiprasad.in

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

मुर्ख व्यक्ति यह नहीं समझता कि परमात्मा उसके अन्तर में मित्र रूप में बैठा है और उसके कर्मों का संचालन कर रहा है । यद्यपि स्थान, कर्ता, चेष्टा तथा इन्द्रियाँ भौतिक कारण हैं, लेकिन अन्तिम (मुख्य) कारण तो स्वयं भगवान् हैं । अतएव मनुष्य को चाहिए कि केवल चार भौतिक कारणों को ही न देखे, अपितु परम सक्षम कारण को भी देखे । जो परमेश्वर को नहीं देखता, वह अपने आपको ही कर्ता मानता है ।

17.

bhaktiprasad.in

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते |
हत्वापि स ईमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते || 18.17 ||

जो मिथ्या अहंकार से प्रेरित नहीं है, जिसकी बुद्धि बँधी नहीं है, वह इस संसार में मनुष्यों को मारता हुआ भी नहीं मारता । न ही वह अपने कर्मों से बँधा होता है ।

One who is not motivated by false ego, whose intelligence is not entangled, though he kills men in this world, is not the slayer. Nor is he bound by his actions.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

इस श्लोक में भगवान् अर्जुन को बताते हैं कि युद्ध न करने की इच्छा अहंकार से उत्पन्न होती है । अर्जुन स्वयं को कर्ता मान बैठा था, लेकिन उसने अपने भीतर तथा बाहर परम (परमात्मा) के निर्देश पर विचार नहीं किया था | यदि कोई यह न जाने कि कोई परम निर्देश भी है, तो वह कर्म क्यों करे? लेकिन जो व्यक्ति कर्म के उपकरणों को, कर्ता रूप में अपने को तथा निर्देशक के रूप में परमेश्वर को मानता है, वह प्रत्येक कार्य को पूर्ण करने में सक्षम है | ऐसा व्यक्ति कभी मोहग्रस्त नहीं होता | जीव में व्यक्तिगत कार्यकलाप तथा उसके उत्तरदायित्व का उदय मिथ्या अहंकार से तथा ईश्वरविहीनता या कृष्णभावनामृत के अभाव से होता है | जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत में परमात्मा या भगवान् के आदेशानुसार कर्म करता है, वह वध करता हुआ भी वध नहीं करता | न ही वह कभी ऐसे वध के फल भोगता है | जब कोई सैनिक अपने श्रेष्ठ अधिकारी सेनापति की आज्ञा से वध करता है, तो उसको दण्डित नहीं किया जाता | लेकिन यदि वही सैनिक स्वेच्छा से वध कर दे, तो निश्चित रूप से न्यायालय द्वारा उसका निर्णय होता है |

18.

bhaktiprasad.in

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना |
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः || 18.18 ||

ज्ञान, ज्ञेय तथा ज्ञाता - ये तीनों कर्म को प्रेरणा देने वाले कारण हैं |
इन्द्रियाँ (करण), कर्म तथा कर्ता - ये तीन कर्म के संघटक हैं |

Knowledge, the object of knowledge and the knower are the three factors which motivate action; the senses, the work and the doer comprise the threefold basis of action.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

दैनिक कार्य के लिए तीन प्रकार की प्रेरणाएँ हैं - ज्ञान, ज्ञेय तथा ज्ञाता | कर्म का उपकरण (करण), स्वयं कर्म तथा कर्ता - ये तीनों कर्म के संघटक कहलाते हैं | किसी भी मनुष्य द्वारा किये गये किसी कर्म में ये ही तत्त्व रहते हैं | कर्म करने के पूर्ण कुछ न कुछ प्रेरणा होती है | किसी भी कर्म से पहले प्राप्त होने वाला फल कर्म के सूक्ष्म रूप में वास्तविक बनता है | इसके बाद वह क्रिया का रूप धारण करता है | पहले मनुष्य को सोचने, अनुभव करने तथा इच्छा करने जैसी मनोवैज्ञानिक विधियों का सामना करना होता है, जिसे प्रेरणा कहते हैं और यह प्रेरणा चाहे शास्त्रों से प्राप्त हो, या गुरु के उपदेश से, एकसी होती है | जब प्रेरणा होती है और जब कर्ता होता है, तो इन्द्रियों की सहायता से, जिनमें मन सम्मिलित है और जो समस्त इन्द्रियों का केन्द्र है, वास्तविक कर्म सम्पन्न होता है | किसी कर्म के समस्त संघटकों को कर्म-संग्रह कहा जाता है |

19.

bhaktiprasad.in

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः |
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छ्रीणु तान्यपि || 18.19 ||

प्रकृति के तीन गुणों के अनुसार ही ज्ञान, कर्म तथा कर्ता के तीन-तीन भेद हैं | अब तुम मुझसे इन्हें सुनो |

In accordance with the three modes of material nature, there are three kinds of knowledge, action, and performers of action. Listen as I describe them.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

चौदहवें अध्याय में प्रकृति के तीन गुणों का विस्तार से वर्णन हो चुका है | उस अध्याय में कहा गया था कि सतोगुण प्रकाशक होता है, रजोगुण भौतिकवादी तथा तमोगुण आलस्य तथा प्रमाद का प्रेरक होता है | प्रकृति के सारे गुण बन्धनकारी हैं, वे मुक्ति के साधन नहीं हैं | यहाँ तक कि सतोगुण में भी मनुष्य बद्ध रहता है | सत्रहवें अध्याय में विभन्न प्रकार के मनुष्यों द्वारा विभिन्न गुणों में रहकर की जाने वाली विभिन्न प्रकार की पूजा का वर्णन किया गया | इस श्लोक में भगवान् कहते हैं कि वे तीनों गुणों के अनुसार विभिन्न प्रकार के ज्ञान, कर्ता तथा कर्म के विषय में बताना चाहते हैं |

20.

bhaktiprasad.in

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमिक्षते |
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् || 18.20 ||

जिस ज्ञान से अनन्त रूपों में विभक्त सारे जीवों में एक ही अविभक्त आध्यात्मिक प्रकृति देखी जाती है, उसे ही तुम सात्त्विक जानो |

That knowledge by which one undivided spiritual nature is seen in all existences, undivided in the divided, is knowledge in the mode of goodness.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

जो व्यक्ति हर जीव में, चाहे वह देवता हो, पशु-पक्षी हो या जलजन्तु अथवा पौधा हो, एक ही आत्मा देखता है, उसे सात्त्विक ज्ञान प्राप्त रहता है | समस्त जीवों में एक ही आत्मा है, यद्यपि पूर्व कर्मों के अनुसार उनके शरीर भिन्न-भिन्न हैं | जैसा कि सातवें अध्याय में वर्णन हुआ है, प्रत्येक शरीर में जीवनी शक्ति की अभिव्यक्ति परमेश्वर की पराप्रकृति के कारण होती है | उस एक पराप्रकृति, उस जीवनी शक्ति को प्रत्येक शरीर में देखना सात्त्विक दर्शन है | यह जीवनी शक्ति अविनाशी है, भले ही शरीर विनाशशील हों | जो आपसी भेद है, वह शरीर के कारण है | चूँकि बद्धजीवन में अनेक प्रकार के भौतिक रूप हैं, अतएव जीवनी शक्ति विभक्त प्रतीत होती है | ऐसा निराकार ज्ञान आत्म-साक्षात्कार का एक पहलू है |

21.

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् |
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् || 18.21 ||

जिस ज्ञान से कोई मनुष्य विभिन्न शरीरों में भिन्न-भिन्न प्रकार का जीव देखता है, उसे तुम राजसी जानो |

That knowledge by which a different type of living entity is seen to be dwelling in different bodies is knowledge in the mode of passion.

bhaktiprasad.in

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

यह धारणा कि भौतिक शरीर ही जीव है और शरीर के विनष्ट होने पर चेतना भी नष्ट हो जाती है, राजसी ज्ञान है | इस ज्ञान के अनुसार एक शरीर दूसरे शरीर से भिन्न है, क्योंकि उनमें चेतना का विकास भिन्न प्रकार से होता है, अन्यथा चेतना को प्रकट करने वाला पृथक् आत्मा न रहे | शरीर स्वयं आत्मा है और शरीर के परे कोई पृथक् आत्मा नहीं है | इस ज्ञान के अनुसार चेतना अस्थायी है | या यह कि पृथक् आत्माएँ नहीं होती; एक सर्वव्यापी आत्मा है, जो ज्ञान से पूर्ण है और यह शरीर क्षणिक अज्ञानता का प्रकाश है | या यह कि इस शरीर के परे कोई विशेष जीवात्मा या परम आत्मा नहीं है | ये सब धारणाएँ रजोगुण से उत्पन्न हैं |

22.

bhaktiprasad.in

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् |
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् || 18.22 ||

और वह ज्ञान, जिससे मनुष्य किसी एक प्रकार के कार्य को, जो अति तुच्छ है, सब कुछ मान कर, सत्य को जाने बिना उसमें लिप्त रहता है, तामसी कहा जाता है |

And that knowledge by which one is attached to one kind of work as the all in all, without knowledge of the truth, and which is very meager, is said to be in the mode of darkness.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

सामान्य मनुष्य का 'ज्ञान' सदैव तामसी होता है, क्योंकि प्रत्येक बद्धजीव तमोगुण में ही उत्पन्न होता है | जो व्यक्ति प्रमाणों से या शास्त्रीय आदेशों के माध्यम से ज्ञान अर्जित नहीं करता, उसका ज्ञान शरीर तक ही सीमित रहता है | उसे शास्त्रों के आदेशानुसार कार्य करने की चिन्ता नहीं होती | उसके लिए धन ही ईश्वर है और ज्ञान का अर्थ शारीरिक आवश्यकताओं की तुष्टि है | ऐसे ज्ञान का परम सत्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता | यह बहुत कुछ साधारण पशुओं के ज्ञान तथा खाने, सोने, रक्षा करने तथा मैथुन करने का ज्ञान जैसा है | ऐसे ज्ञान को यहाँ पर तमोगुण से उत्पन्न बताया गया है | दूसरे शब्दों में, इस शरीर से परे आत्मा सम्बन्धी ज्ञान सात्त्विक ज्ञान कहलाता है | जिस ज्ञान से लौकिक तर्क तथा चिन्तन (मनोधर्म) द्वारा नाना प्रकार के सिद्धान्त तथा वाद जन्म ले, वह राजसी है और शरीर को सुखमय बनाये रखने वाले ज्ञान को तामसी कहा जाता है |

23.

नियतं सङ्गरहितमराद्वेषतः कृतम् |
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते || 18.23 ||

जो कर्म नियमित है और जो आसक्ति, राग या द्वेष से रहित कर्मफल की चाह के बिना किया जाता है, वह सात्त्विक कहलाता है |

As for actions, that action in accordance with duty, which is performed without attachment, without love or hate, by one who has renounced fruitive results, is called action in the mode of goodness.

bhaktiprasad.in
Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

विभिन्न आश्रमों तथा समाज के वर्णों के आधार पर शास्त्रों में संस्तुत वृत्तिपरक कर्म, जो अनासक्त भाव से अथवा स्वामित्व के अधिकारों के बिना, प्रेम-घृणा-भावरहित परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए आसक्ति या अधिकार की भावना के बिना कृष्णभावनामृत में किये जाते हैं, सात्त्विक कहलाते हैं |

24.

bhaktiprasad.in

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः |
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् || 18.24 ||

लेकिन जो कार्य अपनी इच्छा पूर्ति के निमित्त प्रयासपूर्वक एवं मिथ्याअहंकार के भाव से किया जाता है, वह रजोगुणी कहा जाता है |

But action performed with great effort by one seeking to gratify his desires, and which is enacted from a sense of false ego, is called action in the mode of passion.

Designed by DigitalWebdia.com

25.

bhaktiprasad.in

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् |
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते || 18.25 ||

जो कर्म मोहवश शास्त्रीय आदेशों की अवहेलना करके तथा भावी बन्धन की परवाह किये बिना या हिंसा अथवा अन्यों को दुख पहुँचाने के लिए किया जाता है, वहतामसी कहलाता है |

And that action performed in ignorance and delusion without consideration of future bondage or consequences, which inflicts injury and is impractical, is said to be action in the mode of ignorance.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

मनुष्य को अपने कर्मों का लेखा राज्य को अथवा परमेश्वरके दूतों को, जिन्हें यमदूत कहते हैं, देना होता है | उत्तरदायित्वहीन कर्मविनाशकारी है, क्योंकि इससे शास्त्रीय आदेशों का विनाश होता है | यह प्रायः हिंसा परआधारित होता है और अन्य जीवों के लिए दुखदायी होता है | उत्तरदायित्व से हीन ऐसाकर्म अपने निजी अनुभव के आधार पर किया जाता है | यह मोह कहलाता है | ऐसा समस्त मोहग्रस्त कर्म तमोगुण के फलस्वरूप होता है |

26.

bhaktiprasad.in

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः |
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते || 18.26 ||

जो व्यक्ति भौतिक गुणों के संसर्ग के बिना अहंकाररहित, संकल्प तथा उत्साहपूर्वक अपना कर्म करता है और सफलता अथवा असफलता में अविचलित रहता है, वह सात्त्विक कर्ता कहलाता है |

The worker who is free from all material attachments and false ego, who is enthusiastic and resolute and who is indifferent to success or failure, is a worker in the mode of goodness.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

कृष्णभावनामय व्यक्ति सदैव प्रकृति के गुणों से अतीत होता है | उसे अपना को सौंपे गये कर्म के परिणाम की कोई आकांक्षा रहती, क्योंकि वह मिथ्या अहंकार तथा घमंड से परे होता है | फिर भी कार्य के पूर्ण होने तक वह सदैव उत्साह से पूर्ण रहता है | उसे होने वाले कष्टों की कोई चिन्ता नहीं होती, वह सदैव उत्साहपूर्ण रहता है | वह सफलता या विफलता की परवाह नहीं करता, वह सुख-दुख में समभाव रहता है | ऐसा कर्ता सात्त्विक है |

27.

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः |
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः || 18.27 ||

जो कर्ता कर्म तथा कर्म-फल के प्रति आसक्त होकर फलों का भोग करनाचाहता है तथा जो लोभी, सदैव ईर्ष्यालु, अपवित्र और सुख-दुख से विचलित होने वालाहै, वह राजसी कहा जाता है |

But that worker who is attached to the fruits of his labor and who passionately wants to enjoy them, who is greedy, envious and impure and moved by happiness and distress, is a worker in the mode of passion.

bhaktiprasad.in

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

मनुष्य सदैव किसी कार्य के प्रति या फल के प्रति इसलिए अत्यधिक आसक्त रहता है, क्योंकि वह भौतिक पदार्थों, घर-बार, पत्नी तथा पुत्र केप्रति अत्यधिक अनुरक्त होता है | ऐसा व्यक्ति जीवन में ऊपर उठने की आकांक्षा नहींरखता | वह इस संसार को यथासम्भव आरामदेह बनाने में ही व्यस्त रहता है | सामान्यतःवह अत्यन्त लोभी होता है और सोचता है कि उसके द्वारा प्राप्त की गई प्रत्येक वस्तुस्थायी है और कभी नष्ट नहीं होगी | ऐसा व्यक्ति अन्यों से ईर्ष्या करता है औरइन्द्रियतृप्ति के लिए कोई भी अनुचित कार्य कर सकता है | अतएव ऐसा व्यक्ति अपवित्रहोता है और वह इसकी चिन्ता नहीं करता कि उसकी कमाई शुद्ध है या अशुद्ध | यदि उसकाकार्य सफल हो जाता है तो वह अत्यधिक प्रसन्न और असफल होने पर अत्यधिक दुखी होता है| रजोगुणी कर्ता ऐसा ही होता है |

28.

bhaktiprasad.in

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः |
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते || 18.28 ||

जो कर्ता सदा शास्त्रों के आदेशों के विरुद्ध कार्य करता रहता है, जो भौतिकवादी, हठी, कपटी तथा अन्यों का अपमान करने में पटु है और तथा जो आलसी, सदैव खिन्न तथा काम करने में दीर्घसूत्री है, वह तमोगुणी कहलाता है |

And that worker who is always engaged in work against the injunction of the scripture, who is materialistic, obstinate, cheating and expert in insulting others, who is lazy, always morose and procrastinating, is a worker in the mode of ignorance.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

शास्त्रीय आदेशों से हमें पता चलता है कि हमें कौन सा काम करना चाहिए और कौन सा नहीं करना चाहिए | जो लोग शास्त्रों के आदेशों की अवहेलना करके अकरणीय कार्य करते हैं, प्रायः भौतिकवादी होते हैं | वे प्रकृति के गुणों के अनुसार कार्य करते हैं, शास्त्रों के आदेशों के अनुसार नहीं | ऐसे कर्ता भद्र नहीं होते और सामान्यतया सदैव कपटी (धूर्त) तथा अन्यों का अपमान करने वाले होते हैं | वे अत्यन्त आलसी होते हैं, काम होते हुए भी उसे ठीक से नहीं करते और बाद में करने के लिए उसे एक तरफ रख देते हैं, अतएव वे खिन्न रहते हैं | जो काम एक घंटे में हो सकता है, उसे वे वर्षों तक घसीटते हैं-वे दीर्घसूत्री होते हैं | ऐसे कर्ता तमोगुणी होते हैं |

29.

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं श्रृणु |
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय || 18.29 ||

हे धनञ्जय! अब मैं प्रकृति के तीनों गुणों के अनुसार तुम्हें विभिन्न प्रकार की बुद्धि तथा धृति के विषय में विस्तार से बताऊँगा | तुम इसे सुनो |

Now, O winner of wealth, please listen as I tell you in detail of the three kinds of understanding and determination according to the three modes of nature.

bhaktiprasad.in

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

ज्ञान, ज्ञेय तथा ज्ञाता की व्याख्या प्रकृति के गुणों के अनुसार तीन-तीन पृथक् विभागों में करने के बाद अब भगवान् कर्ता की बुद्धि तथा उसके संकल्प (धैर्य) के विषय में उसी प्रकार से बता रहे हैं |

30.

bhaktiprasad.in

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये |
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी || 18.30 ||

हे पृथापुत्र ! वह बुद्धि सतोगुणी है, जिसके द्वारा मनुष्य यह जानता है कि क्या करणीय है और क्या नहीं है, किस्से डरना चाहिए और किस्से नहीं, क्या बाँधने वाला है और क्या मुक्ति देने वाला है |

O son of P□thā, that understanding by which one knows what ought to be done and what ought not to be done, what is to be feared and what is not to be feared, what is binding and what is liberating, that understanding is established in the mode of goodness.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

शास्त्रों के निर्देशानुसार कर्म करने को या उन कर्मों को करना जिन्हें किया जाना चाहिए, प्रवृत्ति कहते हैं | जिन कार्यों का इस तरह निर्देश नहीं होता वे नहीं किये जाने चाहिए | जो व्यक्ति शास्त्रों के निर्देशों को नहीं जानता, वह कर्मों तथा उनकी प्रतिक्रिया से बँध जाता है | जो बुद्धि अच्छे बुरे का भेद बताती है, वह सात्त्विकी है |

31.

bhaktiprasad.in

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च |
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी || 18.31 ||

हे पृथापुत्र ! जो बुद्धि धर्म तथा अधर्म,करणीय तथा अकरणीय कर्म में भेद नहीं कर पाती,वह राजसी है ।

And that understanding which cannot distinguish between the religious way of life and the irreligious, between action that should be done and action that should not be done, that imperfect understanding, O son of P⊠thā, is in the mode of passion.

Designed by DigitalWebdia.com

32-33.

bhaktiprasad.in

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता |
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी || 18.32 ||

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः |
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी || 18.33 ||

हे पृथापुत्र ! जो अटूट है, जिसे योगाभ्यास द्वारा अचल रहकर धारण किया जाता है और जो इस प्रकार मन, प्राण तथा इन्द्रियों के कार्यकलापों को वश में रखती है, वह धृति सात्त्विक है |

18.32: That understanding which considers irreligion to be religion and religion to be irreligion, under the spell of illusion and darkness, and strives always in the wrong direction, O Pārtha, is in the mode of ignorance.
18.33: O son of Parthā, that determination which is unbreakable, which is sustained with steadfastness by yoga practice, and thus controls the mind, life, and the acts of the senses, is in the mode of goodness.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

तामसी बुद्धि को जिस दिशा में काम करना चाहिए, उससे सदैव उल्टी दिशा में काम करती है | यह उन धर्मों को स्वीकारती है, जो वास्तव में धर्म नहीं हैं और वास्तविक धर्म को ठुकराती है | अज्ञानी मनुष्य महात्मा को सामान्य व्यक्ति मानते हैं और सामान्य व्यक्ति को महात्मा स्वीकार करते हैं | वे सत्य को असत्य तथा असत्य को सत्य मानते हैं | वे सारे कामों में कुपथ ग्रहण करते हैं, अतएव उनकी बुद्धि तामसी होती है |

तात्पर्य

योग परमात्मा को जानने का साधन है | जो व्यक्ति मन, प्राण तथा इन्द्रियों को परमात्मा में एकाग्र करके दृढ़तापूर्वक उनमें स्थित रहता है, वह कृष्णभावना में तत्पर होता है | ऐसी धृति सात्त्विक होती है | अव्यभिचारिण्या शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह सूचित करता है कि कृष्णभावनामृत में तत्पर मनुष्य कभी किसी दूसरे कार्य द्वारा विचलित नहीं होता |

34.

bhaktiprasad.in

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन |
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी || 18.34 ||

लेकिन हे अर्जुन ! जिस धृति से मनुष्य धर्म, अर्थ तथा काम के फलों मेंलिप्त बना रहता है, वह राजसी है |

And that determination by which one holds fast to fruitive result in religion, economic development and sense gratification is of the nature of passion, O Arjuna.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

जो व्यक्ति धार्मिक या आर्थिक कार्यों में कर्मफलों कासदैव आकांक्षी होता है, जिसकी एकमात्र इच्छा इन्द्रियतृप्ति होती है तथा जिसका मन,जीवन तथा इन्द्रियाँ इस प्रकार संलग्न रहती हैं, वह रजोगुणी होता है |

35.

bhaktiprasad.in

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च |
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी || 18.35 ||

हे पार्थ! जो धृति स्वप्न, भय, शोक, विषाद तथा मोह के परे नहीं जाती,ऐसी दुर्बुद्धिपूर्ण धृति तामसी है |

And that determination which cannot go beyond dreaming, fearfulness, lamentation, moroseness, and illusion-such unintelligent determination is in the mode of darkness.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

इससे यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि सतोगुणी मनुष्य स्वप्न नहीं देखता | यहाँ पर स्वप्न का अर्थ अति निद्रा है | स्वप्न सदा आता है, चाहे वह सात्त्विक हो, राजस हो या तामसी, स्वप्न तो प्राकृतिक घटना है | लेकिन जो अपने को अधिक सोने से नहीं बचा पाते, जो भौतिक वस्तुओं को भोगने के गर्व से नहीं बच पाते,जो सदैव संसार पर प्रभुत्व जताने का स्वप्न देखते रहते हैं और जिनके प्राण, मन तथा इन्द्रियाँ इस प्रकार लिप्त रहतीं हैं, वे तामसी धृति वाले कहे जाते हैं |

36-37.

सुखं त्विदानीं त्रिविधं श्रृणु मे भरतर्षभ |
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति || 18.36 ||

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेSमृतोपमम् |
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् || 18.37 ||

हे भरतश्रेष्ठ! अब मुझसे तीन प्रकार के सुखों के विषय में सुनों,जिनके द्वारा बद्धजीव भोग करता है और जिसके द्वारा कभी-कभी दुखों का अन्त हो जाता है | जो प्रारम्भ में विष जैसा लगता है, लेकिन अन्त में अमृत के समान है औरजो मनुष्य में आत्म-साक्षात्कार जगाता है, वह सात्त्विक सुख कहलाता है |

O best of the Bhāratas, now please hear from Me about the three kinds of happiness which the conditioned soul enjoys, and by which he sometimes comes to the end of all distress. That which in the beginning may be just like poison but at the end is just like nectar and which awakens one to self-realization is said to be happiness in the mode of goodness.

bhaktiprasad.in

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

बद्धजीव भौतिक सुख भोगने की बारम्बार चेष्टा करता है | इसप्रकार वह चर्वित चर्वण करता है | लेकिन कभी-कभी ऐसे भोग के अन्तर्गत वह किसीमहापुरुष की संगति से भवबन्धन से मुक्त हो जाता है | दूसरे शब्दों में, बद्धजीवसदा ही किसी न किसी इन्द्रियतृप्ति में लगा रहता है, लेकिन जब सुसंगति से यह समझलेता है कि यह तो एक ही वस्तु की पुनरावृत्ति है और उसमें वास्तविक कृष्णभावनामृतका उदय होता है, तो कभी-कभी वह ऐसे तथाकथित आवृत्तिमूलक सुख से मुक्त हो जाता है |

आत्म-साक्षात्कार के साधन में मन तथा इन्द्रियों को वश में करने तथामन को आत्मलेंद्रित करने के लिए नाना प्रकार के विधि-विधानों का पालन करना पड़ता है| ये सारी विधियाँबहुत कठिन और विष के समान अत्यन्त कड़वी लगने वाली हैं, लेकिनयदि कोई इन नियमों के पालन में सफल हो जाता है और दिव्य पद को प्राप्त हो जाता है,तो वह वास्तविक अमृत का पान करने लगता है और जीवन का सुख प्राप्त करता है |

38.

bhaktiprasad.in

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् |
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् || 18.38 ||

जो सुख इन्द्रियों द्वारा उनके विषयों के संसर्ग से प्राप्त होता हैऔर प्रारम्भ में अमृततुल्य तथा अन्त में विषतुल्य लगता है, वह रजोगुणी कहलाता है |

That happiness which is derived from contact of the senses with their objects and which appears like nectar at first but poison at the end is said to be of the nature of passion.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

जब कोई युवक किसी युवती से मिलता है, तो इन्द्रियाँ युवकको प्रेरित करती हैं कि वह उस युवती को देखे, उसका स्पर्श करे और उससे संभोग करे |प्रारम्भ में इन्द्रियों को यह अत्यन्त सुखकर लग सकता है, लेकिन अन्त में या कुछसमय बाद वही विष तुल्य बन जाता है | तब वे विलग हो जाते हैं या उनमें तलाक (विवाह-विच्छेद)हो जाता है | फिर शोक, विषाद इत्यादि उत्पन्न होता है | ऐसा सुख सदैव राजसी होताहै | जो सुख इन्द्रियों और विषयों के संयोग से प्राप्त होता है, वह सदैव दुख काकारण बनता है, अतएव इससे सभी तरह से बचना चाहिए |

39.

bhaktiprasad.in

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः |
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् || 18.39 ||

तथा जो सुख आत्म-साक्षात्कार के प्रति अन्धा है, जो प्रारम्भ से लेकर अन्त तक मोहकारक है और जो निद्रा, आलस्य तथा मोह से उत्पन्न होता है, वह तामसी कहलाता है ।

And that happiness which is blind to self-realization, which is delusion from beginning to end and which arises from sleep, laziness and illusion is said to be of the nature of ignorance.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

जो व्यक्ति आलस्य तथा निद्रा में ही सुखी रहता है, वह निश्चय ही तमोगुणी है । जिस व्यक्ति को इसका कोई अनुमान नहीं है कि किस प्रकार कर्म किया जाय और किस प्रकार नहीं, वह भी तमोगुणी है । तमोगुणी व्यक्ति के लिए सारी वस्तुएँ भ्रम (मोह) हैं । उसे न तो प्रारम्भ में सुख मिलता है, न अन्त में । रजोगुणी व्यक्ति के लिए प्रारम्भ में कुछ क्षणिक सुख और अन्त में दुख हो सकता है, लेकिन जो तमोगुणी है, उसे प्रारम्भ में तथा अन्त में दुख ही दुख मिलता है ।

40.

bhaktiprasad.in

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः |
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः || 18.40 ||

इस लोक में, स्वर्ग लोकों में या देवताओं के मध्य में कोई भी ऐसाव्यक्ति विद्यमान नहीं है, जो प्रकृति के तीन गुणों से मुक्त हो |

There is no being existing, either here or among the demigods in the higher planetary systems, which is freed from the three modes of material nature.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

भगवान् इस श्लोक में समग्र ब्रह्माण्ड में प्रकृति के तीनगुणों के प्रभाव का संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं |

41-45.

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप |
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः || 18.41 ||

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च |
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् || 18.42 ||

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् |
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् || 18.43 ||

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् |
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् || 18.44 ||

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः |
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु || 18.45 ||

bhaktiprasad.in

Designed by DigitalWebdia.com

41-45.

18.41 हे परन्तप! ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों में प्रकृतिके गुणों के अनुसार उनके स्वभाव द्वारा उत्पन्न गुणों के द्वारा भेद किया जाता है |

18.42 शान्तिप्रियता, आत्मसंयम, तपस्या, पवित्रता, सहिष्णुता, सत्यनिष्ठा, ज्ञान,विज्ञान तथा धार्मिकता – ये सारे स्वाभाविक गुण हैं, जिनके द्वारा ब्राह्मण कर्मकरते हैं |

18.43 वीरता, शक्ति, संकल्प, दक्षता, युद्ध में धैर्य, उदारता तथा नेतृत्व –ये क्षत्रियों के स्वाभाविक गुण हैं |

18.44 कृषि करना, गो रक्षा तथा व्यापार वैश्यों के स्वाभाविक कर्म हैं औरशूद्रों का कर्म श्रम तथा अन्यों की सेवा करना है |

18.45 अपने अपने कर्म के गुणों का पालन करते हुए प्रत्येक व्यक्ति सिद्ध होसकता है | अब तुम मुझसे सुनो कि यह किस प्रकार किया जा सकता है |

bhaktiprasad.in

Designed by DigitalWebdia.com

bhaktiprasad.in

18.41 Brāhmaṇas, kṣatriyas, vaiśyas and śūdras are distinguished by their qualities of work, O chastiser of the enemy, in accordance with the modes of nature.

18.42 Peacefulness, self-control, austerity, purity, tolerance, honesty, wisdom, knowledge, and religiousness-these are the qualities by which the brāhmaṇas work.

18.43 Heroism, power, determination, resourcefulness, courage in battle, generosity, and leadership are the qualities of work for the kṣatriyas.

18.44 Farming, cattle raising and business are the qualities of work for the vaiśyas, and for the śūdras there is labor and service to others.

18.45 By following his qualities of work, every man can become perfect. Now please hear from Me how this can be done.

Designed by DigitalWebdia.com

46.

bhaktiprasad.in

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् |
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः || 18.46 ||

जो सभी प्राणियों का उद्गम् है और सर्वव्यापी है, उस भगवान् की उपासना करके मनुष्य अपना कर्म करते हुए पूर्णता प्राप्त कर सकता है ।

By worship of the Lord, who is the source of all beings and who is all-pervading, man can, in the performance of his own duty, attain perfection.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

जैसा कि पन्द्रहवें अध्याय में बताया जा चुका है, सारे जीव परमेश्वर के भिन्नांश हैं । इस प्रकार परमेश्वर ही सभी जीवों के आदि हैं । वेदान्त सूत्र में इसकी पुष्टि हुई है-जन्मा द्यस्य यतः । अतएव परमेश्वर प्रत्येक जीव के जीवन के उद्गम हैं । जैसा कि भगवद्गीता के सातवें अध्याय में कहा गया है, परमेश्वर अपनी परा तथा अपरा, इन दो शक्तियों द्वारा सर्वव्यापी हैं । अतएव मनुष्य को चाहिए कि उनकी शक्तियों सहित भगवान् की पूजा करे । सामान्यतया वैष्णव जन परमेश्वर की पूजा उनकी अन्तरंगा शक्ति समेत करते हैं । उनकी बहिरंगा शक्ति उनकी अंतरंगा शक्ति का विकृत प्रतिबिम्ब है । बहिरंगा शक्ति पृष्ठ भूमि है, लेकिन परमेश्वर परमात्मा रूप में पूर्णांश का विस्तार करके सर्वत्र स्थित हैं । वे सर्वत्र समस्त देवताओं, मनुष्यों और पशुओं के परमात्मा हैं । अतएव मनुष्य को यह जानना चाहिए कि परमेश्वर का भिन्नांश अंश होने के कारण उसका कर्तव्य है कि वह भगवान् की सेवा करे । प्रत्येक व्यक्ति को कृष्णभावनामृत में भगवान् की भक्ति करनी चाहिए । इस श्लोक में इसी की संस्तुति की गई है । प्रत्येक व्यक्ति को सोचना चाहिए कि इन्द्रियों के स्वामी हृषिकेश द्वारा वह विशेष कर्म में प्रवृत्त किया गया है । अतएव जो जिस कर्म में लगा है, उसी के फल के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण को पूजना चाहिए । यदि वह इस प्रकार से कृष्णभावनामय हो कर सोचता है, तो भगवत्कृपा से वह पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है । यही जीवन की सिद्धि है । भगवान् ने भगवद्गीता में (१२.७) कहा है - तेषामहं समुद्धर्ता । परमेश्वर स्वयं ऐसे भक्त का उद्धार करते हैं । यही जीवन की सर्वोच्च सिद्धि है । कोई चाहे जिस वृत्ति परक कार्य में लगा हो, यदि वह परमेश्वर की सेवा करता है, तो उसे सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त होती है ।

तात्पर्य

कभी-कभी व्यापारिक क्षेत्र में भी व्यापारी को लाभ कमाने के लिए झूठबोलना पड़ता है | यदि वह ऐसा नहीं करे तो उसे लाभ नहीं हो सकता | कभी-कभी व्यापारीकहता है, "अरे मेरे ग्राहक भाई! मैंआपसे कोई लाभ नहीं ले रहा |" लेकिन हमें समझना चाहिए कि व्यापारी बिना लाभ केजीवित नहीं रह सकता | अतएव यदि व्यापारी यह कहता है कि वह कोई लाभ नहीं ले रहा है तोइसे एक सरल झूठ समझना चाहिए | लेकिन व्यापारी को यह नहीं सोचना चाहिए कि चूँकि वहऐसे कार्य में लगा है, जिसमें झूठ बोलना आवश्यक है , अतएव उसे इस व्यवसाय (वैश्यकर्म) को त्यागकर ब्राहमण की वृत्ति ग्रहण करनी चाहिए | इसकी शास्त्रों द्वारासंस्तुति नहीं की गई | चाहे कोई क्षत्रिय हो, वैश्य हो या शुद्र, यदि वह इस कार्यसे भगवान् की सेवा करता है, तो कोई आपत्ति नहीं है | कभी-कभी विभिन्न यज्ञों कासम्पादन करते समय ब्राह्मणों को भी पशुओं की हत्या करनी होती है, क्योंकि इनअनुष्ठानों में पशु की बलि देनी होती है | इसी प्रकार यदि क्षत्रिय अपने कार्य में लगा रहकर शत्रु का वध करता है,तो उस पर पाप नहीं चढ़ता | तृतीय अध्याय में इन बातों की स्पष्ट एवं विस्तृतव्याख्या हो चुकी है | हर मनुष्य को यग्य के लिए अथवा भगवान् विष्णु के लिए कार्यकरना चाहिए | निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए किया गया कोई भी कार्य बन्धन का कारण है |निष्कर्ष यह निकलता है कि मनुष्य को चाहिए कि अपने द्वारा अर्जित विशेष गुण केअनुसार कार्य में प्रवृत्त हो और परमेश्वर की सेवा करने के लिए ही कार्य करने कानिश्चय करे |

47.

bhaktiprasad.in

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् |
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् || 18.47 ||

अपने वृत्तिपरक कार्य को करना, चाहे वह कितना ही त्रुटिपूर्ण ढंग सेक्यों न किया जाय, अन्य किसी के कार्य को स्वीकार करने और अच्छी प्रकार करने की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है | अपने स्वभाव के अनुसार निर्दिष्ट कर्म कभी भी पाप से प्रभावित नहीं होते |

It is better to engage in one's own occupation, even though one may perform it imperfectly, than to accept another's occupation and perform it perfectly. Prescribed duties, according to one's nature, are never affected by sinful reactions.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

भगवद्गीता में मनुष्य के वृत्तिपरक कार्य (स्वधर्म) कानिर्देश है | जैसा कि पूर्ववर्ती श्लोकों में वर्णन हुआ है, ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य तथा शुद्र के कर्तव्य उनके विशेष प्राकृतिक गुणों (स्वभाव) के द्वारानिर्दिष्ट होते हैं | किसी को दूसरे के कार्य का अनुकरण नहीं करना चाहिए | जोव्यक्ति स्वभाव से शुद्र के द्वारा किये जाने वाले कर्म के प्रति आकृष्ट हो, उसेअपने आपको झूठे ही ब्राह्मण नहीं कहना चाहिए, भले ही वह ब्राह्मण कुल में क्यों नउत्पन्न हुआ हो | इस तरह प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि अपने स्वभाव के अनुसारकार्य करे; कोई भी कर्म निकृष्ट (गर्हित) नहीं है, यदि वह परमेश्वर की सेवा केलिए किया जाय | ब्राह्मण का वृत्तिपरक कार्य निश्चित रूप से सात्त्विक है, लेकिनयदि कोई मनुष्य स्वभाव से सात्त्विक नहीं है, तो उसे ब्राह्मण के वृत्तिपरक कार्य (धर्म)का अनुकरण नहीं करना चाहिए | क्षत्रिय या प्रशासक के लिए अनेक गर्हित बातें हैं –क्षत्रिय को शत्रुओं का वध करने के लिए हिंसक होना पड़ता है और कभी-कभी कूटनीति मेंझूठ भी बोलना पड़ता है | ऐसी हिंसा तथा कपट राजनितिक मामलों में चलता है, लेकिनक्षत्रिय से यह आशा नहीं की जाती कि वह अपने वृत्तिपरक कर्तव्य त्याग कर ब्राह्मणके कार्य करने लगे | मनुष्य को चाहिए कि परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिए कार्य करे |उदाहरणार्थ, अर्जुन क्षत्रिय था | वह दूसरे पक्ष से युद्ध करने से बच रहा था |लेकिन यदि ऐसा युद्ध भगवान् कृष्ण के लिए करना पड़े, तो पतन से घबराने की आवश्यकता नहीं है |

तात्पर्य

कभी-कभी व्यापारिक क्षेत्र में भी व्यापारी को लाभ कमाने के लिए झूठबोलना पड़ता है | यदि वह ऐसा नहीं करे तो उसे लाभ नहीं हो सकता | कभी-कभी व्यापारीकहता है, "अरे मेरे ग्राहक भाई! मैंआपसे कोई लाभ नहीं ले रहा |" लेकिन हमें समझना चाहिए कि व्यापारी बिना लाभ केजीवित नहीं रह सकता | अतएव यदि व्यापारी यह कहता है कि वह कोई लाभ नहीं ले रहा है तोइसे एक सरल झूठ समझना चाहिए | लेकिन व्यापारी को यह नहीं सोचना चाहिए कि चूँकि वहऐसे कार्य में लगा है, जिसमें झूठ बोलना आवश्यक है , अतएव उसे इस व्यवसाय (वैश्यकर्म) को त्यागकर ब्राहमण की वृत्ति ग्रहण करनी चाहिए | इसकी शास्त्रों द्वारासंस्तुति नहीं की गई | चाहे कोई क्षत्रिय हो, वैश्य हो या शुद्र, यदि वह इस कार्यसे भगवान् की सेवा करता है, तो कोई आपत्ति नहीं है | कभी-कभी विभिन्न यज्ञों कासम्पादन करते समय ब्राह्मणों को भी पशुओं की हत्या करनी होती है, क्योंकि इनअनुष्ठानों में पशु की बलि देनी होती है | इसी प्रकार यदि क्षत्रिय अपने कार्य में लगा रहकर शत्रु का वध करता है,तो उस पर पाप नहीं चढ़ता | तृतीय अध्याय में इन बातों की स्पष्ट एवं विस्तृतव्याख्या हो चुकी है | हर मनुष्य को यग्य के लिए अथवा भगवान् विष्णु के लिए कार्यकरना चाहिए | निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए किया गया कोई भी कार्य बन्धन का कारण है |निष्कर्ष यह निकलता है कि मनुष्य को चाहिए कि अपने द्वारा अर्जित विशेष गुण केअनुसार कार्य में प्रवृत्त हो और परमेश्वर की सेवा करने के लिए ही कार्य करने कानिश्चय करे |

48.

bhaktiprasad.in

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् |
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः || 18.48 ||

प्रत्येक उद्योग (प्रयास) किसी न किसी दोष से आवृत होता है, जिस प्रकार अग्नि धुएँ से आवृत रहती है | अतएव हे कुन्तीपुत्र! मनुष्य को चाहिए कि स्वभाव से उत्पन्न कर्म को, भले ही वह दोषपूर्ण क्यों न हो, कभी त्यागे नहीं |

Every endeavor is covered by some sort of fault, just as fire is covered by smoke. Therefore one should not give up the work which is born of his nature, O son of Kuntī, even if such work is full of fault.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

बद्ध जीवन में सारा कर्म भौतिक गुणों से दूषित रहता है | यहाँ तक कि ब्राह्मण तक को ऐसे यज्ञ करने पड़ते हैं, जिनमें पशुहत्या अनिवार्य है | इसी प्रकार क्षत्रिय चाहे कितना ही पवित्र क्यों न हो, उसे शत्रुओं से युद्ध करना पड़ता है | वह इससे बच नहीं सकता | इसी प्रकार एक व्यापारी को चाहे वह कितना ही पवित्र क्यों न हो, अपने व्यापार में बने रहने के लिए कभी-कभी लाभ को छिपाना पड़ता है, या कभी-कभी कालाबाजार चलाना पड़ता है | ये बातें आवश्यक हैं, इनसे बचा नहीं जा सकता | इसी प्रकार यदि शुद्र होकर बुरे स्वामी की सेवा करनी पड़े, तो उसे स्वामी की आज्ञा का पालन करना होता है, भले ही ऐसा नहीं होना चाहिए | इन सब दोषों के होते हुए भी, मनुष्य को अपने निर्दिष्ट कर्तव्य करते रहना चाहिए, क्योंकि वे स्वभावगत हैं | यहाँ पर एक अत्यन्त सुन्दर उदहारण दिया जाता है | यद्यपि अग्नि शुद्ध होती है, तो भी उसमें धुआँ रहता है | लेकिन इतने पर भी अग्नि अशुद्ध नहीं होती | अग्नि में धुआँ होने पर भी अग्नि समस्त तत्त्वों में शुद्धतम मानी जाती है | यदि कोई क्षत्रिय की वृत्ति त्याग कर ब्राह्मण की वृत्ति ग्रहण करना पसन्द करता है, तो उसको इसकी कोई निश्चितता नहीं है कि ब्राह्मण वृत्ति में कोई अरुचिकर कार्य नहीं होंगें | अतएव कोई यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि संसार में प्रकृति के कल्मष से कोई भी पूर्णतः मुक्त नहीं है | इस प्रसंग में अग्नि तथा धुएँ का उदाहरण उपयुक्त है |

तात्पर्य

यदि जाड़े के दिनों में कोई अग्नि से कोयला निकालता है, तो कभी-कभी धुएँ से आँखें तथा शरीर के अन्य भाग दुखते हैं, लेकिन इन प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद भी अग्नि को तापा जाता है | इसी प्रकार किसी को अपनी सहज वृत्ति इसलिए नहीं त्याग देनी चाहिए कि कुछ बाधक तत्त्व आ गये हैं | अपितु मनुष्य को चाहिए कि कृष्णभावनामृत में रहकर अपने वृत्तिपरक कार्य से परमेश्वर की सेवा करने का संकल्प ले | यही सिद्धि अवस्था है | जब कोई भी वृत्तिपरक कार्य भगवान् को प्रसन्न करने के लिए किया जाता है, तो उस कार्य के सारे दोष शुद्ध हो जाते हैं | जब भक्ति से सम्बन्धित कर्मफल शुद्ध हो जाते हैं, तो मनुष्य अपने अन्तर का दर्शन कर सकता है और यही आत्म-साक्षात्कार है |

49.

bhaktiprasad.in

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः |
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्न्यासेनाधिगच्छति || 18.49 ||

जो आत्मसंयमी तथा अनासक्त है एवं जो समस्त भौतिक भोगों की परवाह नहीं करता, वह संन्यास के अभ्यास द्वारा कर्मफल से मुक्ति की सर्वोच्च सिद्ध-अवस्था प्राप्त कर सकता है |

One can obtain the results of renunciation simply by self-control and by becoming unattached to material things and disregarding material enjoyments. That is the highest perfectional stage of renunciation.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

सच्चे संन्यास का अर्थ है कि मनुष्य सदा अपने को परमेश्वर का अंश मानकर यह सोचे कि उसे अपने कार्य के फल को भोगने का कोई अधिकार नहीं है | चूँकि वह परमेश्वर का अंश है, अतएव उसके कार्य का फल परमेश्वर द्वारा भोग जाना चाहिए, यही वास्तव कृष्णभावनामृत है | जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत में स्थित होकर कर्म करता है, वही वास्तव में संन्यासी है | ऐसी मनोवृत्ति होने से मनुष्य सन्तुष्ट रहता है क्योंकि वह वास्तव में भगवान् के लिए कार्य कर रहा होता है | इस प्रकार वह किसी भी भौतिक वस्तु के लिए आसक्त नहीं होता, वह भगवान् की सेवा से प्राप्त दिव्य सुख से परे किसी भी वस्तु में आनन्द न लेने का आदी हो जाता है | संन्यासी को पूर्व कार्यकलापों के बन्धन से मुक्त माना जाता है, लेकिन जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत में होता है वह बिना संन्यास ग्रहण किये ही यह सिद्धि प्राप्त कर लेता है | यह मनोदशा योगारूढ़ या योग की सिद्धावस्था कहलाती है | जैसा कि तृतीय अध्याय में पुष्टि हुई है – यस्त्वात्मरतिरेव स्यात्– जो व्यक्ति अपने में संतुष्ट रहता है, उसे अपने कर्म से किसी प्रकार के बन्धन का भय नहीं रह जाता |

50.

bhaktiprasad.in

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे |
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा || 18.50 ||

हे कुन्तीपुत्र ! जिस तरह इस सिद्धि को प्राप्त हुआ व्यक्ति परम सिद्धावाथा अर्थात् ब्रह्म को, जो सर्वोच्च ज्ञान की अवस्था है, प्राप्त करता है, उसका मैं संक्षेप में तुमसे वर्णन करूँगा, उसे तुम जानो |

O son of Kuntī, learn from Me in brief how one can attain to the supreme perfectional stage, Brahman, by acting in the way which I shall now summarize.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

भगवान् अर्जुन को बताते हैं कि किस तरह कोई व्यक्ति केवल अपने वृत्तिपरक कार्य मे लग कर परम सिद्धावस्था को प्राप्त कर सकता है, यदि यह कार्य भगवान् के लिए किया गया हो | यदि मनुष्य अपने कर्म के फल को परमेश्वर की तुष्टि के लिए ही त्याग देता है, तो उसे ब्रह्म की चरम अवस्था प्राप्त हो जाती है | यह आत्म-साक्षात्कार की विधि है | ज्ञान की वास्तविक सिद्धि शुद्ध कृष्णभावनामृत प्राप्त करने में है, इसका वर्णन अगले श्लोकों मे किया गया है |

bhaktiprasad.in

बुद्ध्या विशुद्ध्या युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च |
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च || 18.51 ||

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः |
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः || 18.52 ||

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् |
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते || 18.53 ||

Designed by DigitalWebdia.com

bhaktiprasad.in

अपनी बुद्धि से शुद्ध होकर तथा धैर्यपूर्वक मन को वश मे करते हुए, इन्द्रियतृप्ति के विषयों का त्याग कर, राग तथा द्वेष से मुक्त होकर जो व्यक्ति एकान्त स्थान में वास करता है, जो थोड़ा खाता है, जो अपने शरीर मन तथा वाणी को वश में रखता है, जो सदैव समाधि में रहता है और पूर्णतया विरक्त, मिथ्या अहंकार, मिथ्या शक्ति, मिथ्या गर्व, काम, क्रोध तथा भौतिक वस्तुओं के संग्रह से मुक्त है, जो मिथ्या स्वामित्व की भावना से रहित तथा शान्त है वह निश्चय ही आत्म-साक्षात्कार के पद को प्राप्त होता है |

Being purified by his intelligence and controlling the mind with determination, giving up the objects of sense gratification, being freed from attachment and hatred, one who lives in a secluded place, who eats little and who controls the body and the tongue, and is always in trance and is detached, who is without false ego, false strength, false pride, lust, anger, and who does not accept material things, such a person is certainly elevated to the position of self-realization.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

जो मनुष्य बुद्धि द्वारा शुद्ध हो जाता है, वह अपने आपको सत्त्व गुण मे अधिष्ठित कर लेता है | इस प्रकार वह मन को वश मे करके सदैव समाधि मे रहता है | वह इन्द्रियतृप्ति के विषयों के प्रति आसक्त नहीं रहता और अपने कार्यों मे राग तथा द्वेष से मुक्त होता है | ऐसा विरक्त व्यक्ति स्वभावतः एकान्त स्थान में रहना पसन्द करता है, वह आवश्यकता से अधिक खाता नहीं और अपने शरीर तथा मन की गतिविधियों पर नियन्त्रण रखता है | वह मिथ्या अहंकार से रहित होता है क्योंकि वह अपने को शरीर नहीं समझता | न ही वह अनेक भौतिक वस्तुएँ स्वीकार करके शरीर को स्थूल तथा बलवान बनाने की इच्छा करता है | चूँकि वह देहात्मबुद्धि से रहित होता है अतेव वह मिथ्या गर्व नहीं करता | भगवत्कृपा से उसे जितना कुछ प्राप्त हो जाता है, उसी से वह संतुष्ट रहता है और इन्द्रियतृप्ति न होने पर भी क्रूद्ध नहीं होता | न ही वह इन्द्रियविषयों को प्राप्त करने के लिए प्रयास करता है | इस प्रकार जब वह मिथ्या अहंकार से पूर्णतया मुक्त हो जाता है, तो वह समस्त भौतिक वस्तुओं से विरक्त बन जाता है और यही ब्रह्म की आत्म-साक्षात्कार अवस्था है | यह ब्रह्मभूत अवस्था कहलाती है | जब मनुष्य देहात्मबुद्धि से मुक्त हो जाता है, तो वह शान्त हो जाता है और उसे उत्तेजित नहीं किया जा सकता इसका वर्णन भगवद्गीता मे (२.७०) इस प्रकार हुआ है -

तात्पर्य

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् |
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी || ७० ||

'जो मनुष्य इच्छाओं के अनवरत प्रवाह से विचलित नहीं होता, जिस प्रकार नदियों के जल के निरन्तर प्रवेश करते रहने और सदा भरते रहने पर भी समुद्र शांत रहता है, उसी तरह वही शान्ति प्राप्त कर सकता है, वह नहीं, जो ऐसी इच्छाओं की तुष्टि के लिए निरन्तर उद्योग करता रहता है |'

54.

bhaktiprasad.in

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति |
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् || 18.54 ||

इस प्रकार जो दिव्य पद पर स्थित है, वह तुरन्त परब्रह्म का अनुभव करता है और पूर्णतया प्रसन्न हो जाता है | वह न तो कभी शोक करता है, न किसी वस्तु की कामना करता है | वह प्रत्येक जीव पर समभाव रखता है | उस अवस्था में वह मेरी शुद्ध भक्ति को प्राप्त करता है |

One who is thus transcendentally situated at once realizes the Supreme Brahman. He never laments nor desires to have anything; he is equally disposed to every living entity. In that state he attains pure devotional service unto Me.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

निर्विशेषवादी के लिए ब्रह्मभूत अवस्था प्राप्त करना अर्थात् ब्रह्म से तदाकार होना परम लक्ष्य होता है | लेकिन साकारवादी शुद्धभक्त को इससे भी आगे चलकर शुद्ध भक्ति में प्रवृत्त होना होता है | इसका अर्थ हुआ कि जो भगवद्भक्ति में रत है, वह पहले ही मुक्ति की अवस्था, जिसे ब्रह्मभूत या ब्रह्म से तादात्मय कहते हैं, प्राप्त कर चुका होता है | परमेश्वर या परब्रह्म से तदाकार हुए बिना कोई उनकी सेवा नहीं कर सकता | परम ज्ञान होने पर सेव्य तथा सेवक में कोई अन्तर नहीं कर सकता, फिर भी उच्चतर आध्यात्मिक दृष्टि से अन्तर तो रहता ही है | देहात्मबुद्धि के अन्तर्गत, जब कोई इन्द्रियतृप्ति के लिए कर्म करता है, तो दुख का भागी होता है, लेकिन परम जगत् में शुद्ध भक्ति में रत रहने पर कोई दुख नहीं रह जाता | कृष्णभावनाभावित भक्त को न तो किसी प्रकार का शोक होता है, न आकांक्षा होती है चूँकि ईश्वर पूर्ण है, अतएव ईश्वर में सेवारत जीव भी कृष्णभावना में रहकर अपने में पूर्ण रहता है | वह ऐसी नदी के तुल्य है, जिसके जल की सारी गंदगी साफ कर दी गई है | चूँकि शुद्ध भक्त में कृष्ण के अतिरिक्त कोई विचार ही नहीं उठते, अतएव वह प्रसन्न रहता है | वह न तो किसी भौतिक क्षति पर शोक करता है, न किसी लाभ की आकांक्षा करता है, क्योंकि वह भगवद्भक्ति से पूर्ण होता है | वह किसी भौतिक भोग की आकांक्षा नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि प्रत्येक जीव भगवान् का अंश है, अतएव वह उनका नित्य दास है | वह भौतिक जगत में न तो किसी को अपने से उच्च देखता है और न किसी को निम्न |

तात्पर्य

ये उच्च तथा निम्न पद क्षणभंगुर हैं और भक्त को क्षणभंगुर प्राकट्य तथा तिरोधान से कुछ लेना-देना नहीं रहता | उसके लिए पत्थर तथा सोना बराबर होते हैं | यह ब्रह्मभूत अवस्था है, जिसे शुद्ध भक्त सरलता से प्राप्त कर लेता है | उस अवस्था में परब्रह्म से तादात्मय और अपने अस्तित्व का विलय नरकीय बन जाता है, स्वर्ग प्राप्त करने का विचार मृगतृष्णा लगता है और इन्द्रियाँ विषदंतविहीन सर्प की भाँति प्रतीत होती है | जिस प्रकार विषदंतविहीन सर्प से कोई भय नहीं रह जाता उसी प्रकार स्वतः संयमित इन्द्रियों से कोई भय नहीं रह जाता | यह संसार उस व्यक्ति के लिए दुखमय है, जो भौतिकता से ग्रस्त है | लेकिन भक्त के लिए समस्त जगत् वैकुण्ठ-तुल्य है | इस ब्रह्माण्ड का महान से महानतम पुरुष भी भक्त के लिए एक क्षुद्र चीटीं से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं होता | ऐसी अवस्था भगवान् चैतन्य की कृपा से ही प्राप्त हो सकती है, जिन्होंने इस युग में शद्ध भक्ति का प्रचार किया |

55.

bhaktiprasad.in

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः |
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् || 18.55 ||

केवल भक्ति से मुझ भगवान् को यथारूप में जाना जा सकता है | जब मनुष्य ऐसी भक्ति से मेरे पूर्ण भावनामृत में होता है, तो वह वैकुण्ठ जगत् में प्रवेश कर सकता है |

One can understand the Supreme Personality as He is only by devotional service. And when one is in full consciousness of the Supreme Lord by such devotion, he can enter into the kingdom of God.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके स्वांशों को न तो मनोधर्म द्वारा जाना जा सकता है, न ही अभक्तगण उन्हें समझ पाते हैं | यदि कोई व्यक्ति भगवान् को समझना चाहता है, तो उसे शुद्ध भक्त के पथप्रदर्शन में शुद्ध भक्ति ग्रहण करनी होती है, अन्यथा भगवान् सम्बन्धी सत्य (तत्त्व) उससे सदा छिपा रहेगा | जैसा कि भगवद्गीता (७.२५) कहा जा चुका है – नाहं प्रकाशः सर्वस्य– मैं सबों के समक्ष प्रकाशित नहीं होता | केवल पाण्डित्य या मनोधर्म द्वारा ईश्वर को नहीं समझा जा सकता | कृष्ण को केवल वही समझ पाता है, जो कृष्णभावनामृत तथा भक्ति में तत्पर रहता है | इसमें विश्वविद्यालय की उपाधियाँ सहायक नहीं होती हैं | जो व्यक्ति कृष्ण विज्ञान (तत्त्व) से पूर्णतया अवगत है, वही वैकुण्ठजगत् या कृष्ण के धाम में प्रवेश कर सकता है | ब्रह्मभूत होने का अर्थ यह नहीं है कि वह अपना स्वरूप खो बैठता है | भक्ति तो रहती ही है और जब तक भक्ति का अस्तित्व रहता है, तब तक ईश्वर, भक्त तथा भक्ति की विधि रहती है | ऐसे ज्ञान का नाश मुक्ति के बाद भी नहीं होता | मुक्ति का अर्थ देहात्मबुद्धि से मुक्ति प्राप्त करना है | आध्यात्मिक जीवन में वैसा ही अन्तर, वही व्यक्तित्व (स्वरूप) बना रहता है, लेकिन शुद्ध कृष्णभावनामृत में ही विशते शब्द का अर्थ है "मुझमें प्रवेश करता है|" भ्रमवश यह नहीं सोचना चाहिए कि यह शब्द अद्वैतवाद का पोषक है और मनुष्य निर्गुण ब्रह्म से एकाकार हो जाता है |

तात्पर्य

ऐसा नहीं है |विशते का तात्पर्य है कि मनुष्य अपने व्यक्तित्व सहित भगवान् के धाम में, भगवान् की संगति करने तथा उनकी सेवा करने के लिए प्रवेश कर सकता है | उदाहरणार्थ, एक हरा पक्षी (शुक) हरे वृक्ष में इसलिए प्रवेश नहीं करता कि वह वृक्ष से तदाकार (लीन) हो जाय, अपितु वह वृक्ष के फलों का भोग करने के लिए प्रवेश करता है | निर्विशेषवादी सामान्यतया समुद्र में गिरने वाली तथा समुद्र से मिलने वाली नदी का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं | यह निर्विशेषवादियों के लिए आनन्द का विषय हो सकता है, लेकिन साकारवादी अपने व्यक्तित्व को उसी प्रकार बनाये रखना चाहता है, जिस प्रकार समुद्र में एक जलचर प्राणी | यदि हम समुद्र की गहराई में प्रवेश करें तो हमें अनेकानेक जीव मिलते हैं | केवल समुद्र की ऊपरी जानकारी पर्याप्त नहीं है, समुद्र की गहराई में रहने वाले जलचर प्राणियों की भी जानकारी रखना आवश्यक है |

भक्त अपनी शुद्ध भक्ति के कारण परमेश्वर के दिव्य गुणों तथा ऐश्वर्यों को यथार्थ रूप में जान सकता है | जैसा कि ग्याहरवें अध्याय में कहा जा चुका है, केवल भक्ति द्वारा इसे समझा जा सकता है | इसी की पुष्टि यहाँ भी हुई है | मनुष्य भक्ति द्वारा भगवान् को समझ सकता है और उनके धाम में प्रवेश कर सकता है |

तात्पर्य

भौतिक बुद्धि से मुक्ति की अवस्था – ब्रह्मभूत अवस्था – को प्राप्त कर लेने के बाद भगवान् के विषय में श्रवण करने से भक्ति का शुभारम्भ होता है | जब कोई परमेश्वर के विषय में श्रवण करता है, तो स्वतः ब्रह्मभूत अवस्था का उदय होता है और भौतिक कल्मष – यथा लोभ तथा काम – का विलोप हो जाता है | ज्यों-ज्यों भक्त के हृदय से काम तथा इच्छाएँ विलुप्त होती जाती हैं, त्यों-त्यों वह भगवद्भक्ति के प्रति अधिक आसक्त होता जाता है और इस तरह वह भौतिक कल्मष से मुक्त हो जाता है | जीवन की उस स्थिति में वह भगवान् को समझ सकता है | श्रीमद्भागवत में भी इसका कथन हुआ है | मुक्ति के बाद भक्तियोग चलता रहता है | इसकी पुष्टि वेदान्तसूत्र से (4.१.१२) होती है – आप्रायणात् तत्रापि हि दृष्टम्| इसका अर्थ है कि मुक्ति के बाद भक्तियोग चलता रहता है | श्रीमद्भागवत में वास्तविक भक्तिमयी मुक्ति की जो परिभाषा दी गई है उसके अनुसार यह जीव का अपने स्वरूप या अपनी निजी स्वाभाविक स्थिति में पुनःप्रतिष्ठापित हो जाना है | स्वाभाविक स्थिति की व्याख्या पहले ही की जा चुकी है – प्रत्येक जीव परमेश्वर का अंश है, अतएव उसकी स्वाभाविक स्थिति सेवा करने की है | मुक्ति के बाद यह सेवा कभी रूकती नहीं | वास्तविक मुक्ति तो देहात्मबुद्धि की भ्रान्त धारणा से मुक्त होना है |

56.

bhaktiprasad.in

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः |
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् || 18.56 ||

मेरा शुद्ध भक्त मेरे संरक्षण में, समस्त प्रकार के कार्यों में संलग्न रह कर भी मेरी कृपा से नित्य तथा अविनाशी धाम को प्राप्त होता है |

Though engaged in all kinds of activities, My devotee, under My protection, reaches the eternal and imperishable abode by My grace.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

मद्-व्यपाश्रयः शब्द का अर्थ है परमेश्वर के संरक्षण में | भौतिक कल्मष से रहित होने के लिए शुद्ध भक्त परमेश्वर या उनके प्रतिनिधि स्वरूप गुरु के निर्देशन में कर्म करता है | उसके लिए समय की कोई सीमा नहीं है | वह सदा, चौबीसों घंटे, शत प्रतिशत परमेश्वर के निर्देशन में कार्यों में संलग्न रहता है | ऐसे भक्त पर जो कृष्णभावनामृत में रत रहता है, भगवान् अत्यधिक दयालु होते हैं | वह समस्त कठिनाइयों के बावजूद अन्ततोगत्वा दिव्यधाम या कृष्णलोक को प्राप्त करता है | वहाँ उसका प्रवेश सुनिश्चित रहता है, इसमें कोई संशय नहीं है | उस परम धाम में कोई परिवर्तन नहीं होता, वहाँ प्रत्येक वस्तु शाश्वत, अविनश्वर तथा ज्ञानमय होती है |

57.

bhaktiprasad.in

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः |
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव || 18.57 ||

सारे कार्यों के लिए मुझ पर निर्भर रहो और मेरे संरक्षण में सदा कर्म करो |
ऐसी भक्ति में मेरे प्रति पूर्णतया सचेत रहो |

In all activities just depend upon Me and work always under My protection. In such devotional service, be fully conscious of Me.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

जब मनुष्य कृष्णभावनामृत में कर्म करता है, तो वह संसार के स्वामी के रूप में कर्म नहीं करता | उसे चाहिए कि वह सेवक की भाँति परमेश्वर के निर्देशानुसार कर्म करे | सेवक को स्वतंत्रता नहीं रहती | वह केवल अपने स्वामी के आदेश पर कार्य करता है, उस पर लाभ-हानि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता | वह भगवान् के आदेशानुसार अपने कर्तव्य का सच्चे दिल से पालन करता है | अब कोई यह तर्क दे सकता है कि अर्जुन कृष्ण के व्यक्तिगत निर्देशानुसार कार्य कर रहा थे, लेकिन जब कृष्ण उपस्थित न हों तो कोई किस तरह कार्य करें? यदि कोई इस पुस्तक में दिए गये कृष्ण के निर्देश के अनुसार तथा कृष्ण के प्रतिनिधि के मार्गदर्शन में कार्य करता है, तो उसका फल वैसा ही होगा | इस श्लोक में मत्परः शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है | यह सूचित करता है कि मनुष्य जीवन में कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए कृष्णभावनाभावित होकर कार्य करने के अतिरिक्त अन्य कोई लक्ष्य नहीं होता | जब वह इस प्रकार कार्य कर रहा हो तो उसे केवल कृष्ण का ही चिन्तन इस प्रकार से करना चाहिए – "कृष्ण ने मुझे इस विशेष कार्य को पूरा करने के लिए नियुक्त किया है |" और इस तरह कार्य करते हुए उसे स्वाभाविक रूप से कृष्ण का चिन्तन हो आता है | यही पूर्ण कृष्णभावनामृत है | किन्तु यह ध्यान रहे कि मनमाना कर्म करके उसका फल परमेश्वर को अर्पित न किया जाय | इस प्रकार का कार्य कृष्णभावनामृत की भक्ति में नहीं आता | मनुष्य को चाहिए कि कृष्ण के आदेशानुसार कर्म करे | यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है | कृष्ण का यह आदेश गुरु-परम्परा द्वारा प्रमाणिक गुरु से प्राप्त होता है | अतएव गुरु के आदेश को जीवन का मूल कर्तव्य समझना चाहिए | यदि किसी को प्रमाणिक गुरु प्राप्त हो जाता है और वह निर्देशानुसार कार्य करता है, तो कृष्णभावनामाय जीवन की सिद्धि सुनिश्चित है |

bhaktiprasad.in

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि |
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि || 18.58 ||

यदि तुम मुझसे भावनाभावित होगे, तो मेरी कृपा से तुम बद्ध जीवन के सारे अवरोधों को लाँघ जाओगे | लेकिन यदि तुम मिथ्या अहंकारवश ऐसी चेतना में कर्म नहीं करोगे और मेरी बात नहीं सुनोगे, तो तुम विनष्ट हो जाओगे |

If you become conscious of Me, you will pass over all the obstacles of conditional life by My grace. If, however, you do not work in such consciousness but act through false ego, not hearing Me, you will be lost.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

पूर्ण कृष्णभावनाभावित व्यक्ति अपने अस्तित्व के लिए कर्तव्य करने के विषय में आवश्यकता से अधिक उद्विग्न नहीं रहता | जो मुर्ख है, वह समस्त चिन्ताओं से मुक्त कैसे रहे, इस बात को वह समझ नहीं सकता | जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत में कर्म करता है, भगवान् कृष्ण उसके घनिष्ट मित्र बन जाते हैं | वे सदैव अपने मित्र की सुविधा का ध्यान रखते हैं और जो मित्र चौबीसों घंटे उन्हें प्रसन्न करने के लिए निष्ठापूर्वक कार्य में लगा रहता है, वे उसको आत्मदान कर देते हैं | अतएव किसी को देहात्मबुद्धि के मिथ्या अह्वाकार में नहीं बह जाना चाहिए | उसे झूठे ही यह नहीं सोचना चाहिए कि वह प्रकृति के नियमों से स्वतन्त्र है, या कर्म करने के लिए मुक्त है | वह पहले से कठोर भौतिक नियमों के अधीन है | लेकिन जैसे ही वह कृष्णभावनाभावित होकर कर्म करता है, तो वह भौतिक दुश्चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है | मनुष्य को यह भलीभाँति जान लेना चाहिए कि जो कृष्णभावनामृत में सक्रिय नहीं है, वह जन्म-मृत्यु रूपी सागर के भंवर में पड़कर अपना विनाश कर रहा है | कोई भी बद्धजीव यह सही सही नहीं जानता कि क्या करना है और क्या नहीं करना है, लेकिन जो व्यक्ति कृष्णभावनाभावित होकर कर्म अन्तर से करता है, वह कर्म करने के लिए मुक्त है, क्योंकि प्रत्येक किया हुआ कर्म कृष्ण द्वारा प्रेरित तथा गुरु द्वारा पुष्ट होता है |

59.

bhaktiprasad.in

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे |
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति || 18.59 ||

यदि तुम मेरे निर्देशानुसार कर्म नहीं करते और युद्ध में प्रवृत्त नहीं होते हो, तो तुम कुमार्ग पर जाओगे । तुम्हें अपने स्वभाव वश युद्ध में लगना पड़ेगा ।

If you do not act according to My direction and do not fight, then you will be falsely directed. By your nature, you will have to be engaged in warfare.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

अर्जुन एक सैनिक था और क्षत्रिय स्वभाव लेकर जन्मा था । अतएव उसका स्वाभाविक कर्तव्य था कि वह युद्ध करे । लेकिन मिथ्या अहंकारवश वह डर रहा था कि अपने गुरु, पितामह तथा मित्रों का वध करके वह पाप का भागी होगा । वास्तव में वह अपने को अपने कर्मों का स्वामी जान रहा था, मानो वही ऐसे कर्मों के अच्छे-बुरे फलों का निर्देशन कर रहा हो । वह भूल गया कि वहाँ पर साक्षात् भगवान् उपस्थित हैं और उसे युद्ध करने का आदेश दे रहे हैं । यही है बद्धजीव की विस्मृति । परम पुरुष निर्देश देते हैं कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है और मनुष्य को जीवन-सिद्धि प्राप्त करने के लिए केवल कृष्ण भावना मृत में कर्म करना है । कोई भी अपने भाग्य का निर्णय ऐसे नहीं कर सकता जैसे भगवान् कर सकते हैं । अतएव सर्वोत्तम मार्ग यही है कि परमेश्वर से निर्देश प्राप्त करके कर्म किया जाय । भगवान् या भगवान् के प्रतिनिधि स्वरूप गुरु के आदेश की वह कभी उपेक्षा न करे । भगवान् के आदेश को बिना किसी हिचक के पूरा करने के लिए वह कर्म करे - इससे सभी परिस्थियों में सुरक्षित रहा जा सकेगा ।

60.

bhaktiprasad.in

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा |
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् || 18.60 ||

इस समय तुम मोहवश मेरे निर्देशानुसार कर्म करने से मना कर रहे हो । लेकिन हे कुन्तीपुत्र ! तुम अपने ही स्वभाव से उत्पन्न कर्म द्वारा बाध्य होकर वही सब करोगे ।

Under illusion you are now declining to act according to My direction. But, compelled by your own nature, you will act all the same, O son of Kuntī.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

यदि कोई परमेश्वर के निर्देशानुसार कर्म करने से मना करता है, तो वह उन गुणों द्वारा कर्म करने के लिए बाध्य होता है, जिनमें वह स्थित होता है । प्रत्येक व्यक्ति प्रकृति के गुणों के विशेष संयोग के वशीभूत है और तदानुसार कर्म करता है | किन्तु जो स्वेच्छा से परमेश्वर के निर्देशानुसार कार्यरत रहता है, वही गौरवान्वित होता है |

61.

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति |
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारुढ़ानि मायया || 18.61 ||

हे अर्जुन ! परमेश्वर प्रत्येक जीव के हृदय में स्थित हैं और भौतिक शक्ति से निर्मित यन्त्र में सवार की भाँति बैठे समस्त जीवों को अपनी माया से घुमा (भरमा) रहे हैं |

The Supreme Lord is situated in everyone's heart, O Arjuna, and is directing the wanderings of all living entities, who are seated as on a machine, made of the material energy.

bhaktiprasad.in

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

अर्जुन परम ज्ञाता न था और लड़ने या न लड़ने का उसका निर्णय उसके क्षुद्र विवेक तक सीमित था | भगवान् कृष्ण ने उपदेश दिया कि जीवात्मा (व्यक्ति) ही सर्वेसर्वा नहीं है | भगवान् या स्वयं कृष्ण अन्तर्यामी परमात्मा रूप में हृदय में स्थित होकर जीव को निर्देश देते हैं | शरीर-परिवर्तन होते ही जीव अपने विगत कर्मों को भूल जाता है, लेकिन परमात्मा जो भूत, वर्तमान तथा भविष्य का ज्ञाता है, उसके समस्त कार्यों का साक्षी रहता है | अतएव जीवों के सभी कार्यों का संचालन इसी परमात्मा द्वारा होता है | जीव जितना योग्य होता है उतना ही पाता है और उस भौतिक शरीर द्वारा वहन किया जाता है, जो परमात्मा के निर्देश में भौतिक शक्ति द्वारा उत्पन्न किया जाता है | ज्योंही जीव को किसी विशेष प्रकार के शरीर में स्थापित कर दिया जाता है, वह शारीरिक अवस्था के अन्तर्गत कार्य करना प्रारम्भ कर देता है | अत्यधिक तेज मोटरकार में बैठा व्यक्ति कम तेज कार में बैठे व्यक्ति से अधिक तेज जाता है, भले ही जीव अर्थात् चालक एक ही क्यों न हो | इसी प्रकार परमात्मा के आदेश से भौतिक प्रकृति एक विशेष प्रकार के जीव के लिए एक विशेष शरीर का निर्माण करती है, जिससे वह अपनी पूर्व इच्छाओं के अनुसार कर्म कर सके | जीव स्वतन्त्र नहीं होता | मनुष्य हो यह नहीं सोचना चाहिए कि वह भगवान् से स्वतन्त्र है | व्यक्ति तो सदैव भगवान् के नियन्त्रण में रहता है | अतएव उसका कर्तव्य है कि वह शरणागत हो और अगले श्लोक का यही आदेश है |

62.

bhaktiprasad.in

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत |
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् || 18.62 ||

हे भारत ! सब प्रकार से उसी की शरण में जाओ | उसकी कृपा से तुम परम शान्ति को तथा परम नित्यधाम को प्राप्त करोगे |

O scion of Bharata, surrender unto Him utterly. By His grace you will attain transcendental peace and the supreme and eternal abode.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

अतएव जीव को चाहिए कि प्रत्येक हृदय में स्थित भगवान् की शरण ले | इससे इस संसार के समस्त प्रकार के दुखों से छुटकारा मिल जाएगा | ऐसी शरण पाने से मनुष्य न केवल इस जीवन के सारे कष्टों से छुटकारा पा सकेगा, अपितु अन्त में वह परमेश्वर के पास पहुँच जाएगा | वैदिक साहित्य में (ऋग्वेद १.२२.२०) दिव्य जगत् तद्विष्णोः परमं पदम् के रूप में वर्णित है |चूँकि सारी सृष्टि ईश्वर का राज्य है, अतएव इसकी प्रत्येक भौतिक वास्तु वास्तव में आध्यात्मिक है, लेकिन परमं पदम् विशेषतया नित्यधाम को बताता है,जो आध्यात्मिक आकाश या वैकुण्ठ कहलाता है |

भगवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय में कहा गया है - सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः - भगवान् प्रत्येक जीव के हृदय में स्थित हैं |अतएव इस कथन कि मनुष्य अन्तःस्थित परमात्मा की शरण ले, का अर्थ है कि वह भगवान् कृष्ण की शरण ले | कृष्ण को पहले ही अर्जुन ने परम स्वीकार कर लिया है | दसवें अध्याय में उन्हें परम ब्रह्म परम धाम के रूप में स्वीकार किया जा चुका है |अर्जुन ने कृष्ण को भगवान् तथा समस्त जीवों के परम धाम के रूप में स्वीकार कर रखा है, इसलिए नहीं कि यह उसका निजी अनुभव है, वरन् इसलिए भी कि नारद, असित, देवल, व्यास जैसे महापुरुष इसके प्रमाण हैं |

63.

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया |
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु || 18.63 ||

इस प्रकार मैंने तुम्हें गुह्यतर ज्ञान बतला दिया | इस पर पूरी तरह से मनन करो और तब जो चाहे सो करो |

Thus I have explained to you the most confidential of all knowledge. Deliberate on this fully, and then do what you wish to do.

bhaktiprasad.in

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

भगवान् ने पहले ही अर्जुन को ब्रहभूत ज्ञान बतला दिया है | जो इस ब्रहभूत अवस्था में होता है, वह प्रसन्न रहता है,न तो वह शोक करता है, न किसी वस्तु की कामना करता है | ऐसा गुह्यज्ञान के कारण होता है | कृष्ण परमात्मा का ज्ञान भी प्रकट करते हैं | यह ब्रह्मज्ञान भी है, लेकिन यह उससे श्रेष्ठ है |

यहाँ पर यथेच्छसि तथा कुरु - जैसे इच्छा हो वैसा करो - यह सूचित करता है कि ईश्वर जीव की यत्किंचित स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप नहीं करता | भगवद्गीता में भगवान् ने सभी प्रकार से यह बतलाया है कि कोई अपनी जीवन दशा को किस प्रकार अच्छी बना सकता है | अर्जुन को उनका सर्वश्रेष्ठ उपदेश यह है कि हृदय में आसीन परमात्मा की शरणागत हुआ जाए | सही विवेक से मनुष्यको परमात्मा के आदेशानुसार कर्म करने के लिए तैयार होना चाहिए | इससे मनुष्य निरन्तर कृष्णभावनामृत में स्थित हो सकेगा,जो मानव जीवन की सर्वोच्च सिद्धि है | अर्जुन को भगवान् प्रत्यक्षतः युद्ध करने का आदेश दे रहे हैं | शरणागत होने के पूर्व जहाँ तक बुद्धि काम करे मनुष्य को इस विषय पर मनन करने की छूट मिली है और भगवान् के आदेश को स्वीकार करने की यहीसर्वोत्तम विधि है | ऐसा आदेश कृष्ण के प्रामाणिक प्रतिनिधिस्वरूप गुरु के माध्यम से भी प्राप्त होता है |

bhaktiprasad.in

सर्वगुह्यतमं भूयः श्रृणु मे परमं वचः |
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् || 18.64 ||

चूँकि तुम मेरे अत्यन्त प्रिय मित्र हो, अतएव मैं तुम्हें अपना परम आदेश, जो सर्वाधिक गुह्यज्ञान है, बता रहा हूँ |इसे अपने हित के लिए सुनो |

Because you are My very dear friend, I am speaking to you the most confidential part of knowledge. Hear this from Me, for it is for your benefit.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

ज्ञान का गुह्यतम अंश है कि मनुष्य कृष्ण का शुद्ध भक्त बने, सदैव उन्हीं का चिन्तन करे और उन्हीं के लिए कर्म करे | व्यावसायिक ध्यानी बनना कठिन नहीं | जीवन को इस प्रकार ढालना चाहिए कि कृष्ण का चिन्तन करने का सदा अवसर प्राप्त हो | मनुष्य इस प्रकार कर्म करे कि उसके सारे नित्य कर्म कृष्ण के लिए हों | वह अपने जीवन को इस प्रकार व्यवस्थित करे कि चौबीसों घण्टे कृष्ण का ही चिन्तन करता रहे और भगवान् की प्रतिज्ञा है कि जो इस प्रकार कृष्णभावनामाय होगा, वह निश्चित रूप से कृष्णधाम को जाएगा जहाँ वह साक्षात् कृष्ण के सान्निध्य में रहेगा | यह गुह्यतम ज्ञान अर्जुन को इसीलिए बताया गया, क्योंकि वह कृष्ण का प्रिय मित्र (सखा) है | जो कोई भी अर्जुन के पथ का अनुसरण करता है, वह कृष्ण का प्रिय सखा बनकर अर्जुन जैसी ही सिद्धि प्राप्त कर सकता है |

ये शब्द इस बात पर बल देते हैं कि मनुष्य को अपना मन उस कृष्ण पर एकाग्र करना चाहिए जो दोनों हाथों में वंशीधारण किये, सुन्दर मुखवाले तथा अपने बालों में मोर पंख धारण किये हुए साँवले बालक के रूप में हैं | कृष्ण का वर्णन ब्रह्मसंहिता तथा अन्य ग्रथों में पाया जाता है | मनुष्य को परम ईश्वर के आदि रूप कृष्ण पर अपने मन को एकाग्र करना चाहिए | उसे अपने मन को भगवान् के अन्य रूपों की ओर नहीं मोड़ना चाहिए | भगवान् के नाना रूप हैं, यथा विष्णु, नारायण,राम, वराह आदि | किन्तु भक्त को चाहिए कि अपने मन को उस एक रूप पर केन्द्रित करे जो अर्जुन के समक्ष था | कृष्ण के रूप पर मन की यह एकाग्रता ज्ञान का गुह्यतम अंश है जिसका प्रकटीकरण अर्जुन के लिए किया गया, क्योंकि वह कृष्ण का अत्यन्त प्रिय सखा है |

65.

bhaktiprasad.in

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु |
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे || 18.65 ||

सदैव मेरा चिन्तन करो, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो और मुझे नमस्कार करो | इस प्रकार तुम निश्चित रूप से मेरे पास आओगे | मैं तुम्हें वचन देता हूँ, क्योंकि तुम मेरे परम प्रियमित्र हो |

Always think of Me and become My devotee. Worship Me and offer your homage unto Me. Thus you will come to Me without fail. I promise you this because you are My very dear friend.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

ज्ञान का गुह्यतम अंश है कि मनुष्य कृष्ण का शुद्ध भक्त बने, सदैव उन्हीं का चिन्तन करे और उन्हीं के लिए कर्म करे | व्यावसायिक ध्यानी बनना कठिन नहीं | जीवन को इस प्रकार ढालना चाहिए कि कृष्ण का चिन्तन करने का सदा अवसर प्राप्त हो | मनुष्य इस प्रकार कर्म करे कि उसके सारे नित्य कर्म कृष्ण के लिए हों | वह अपने जीवन को इस प्रकार व्यवस्थित करे कि चौबीसों घण्टे कृष्ण का ही चिन्तन करता रहे और भगवान् की प्रतिज्ञा है कि जो इस प्रकार कृष्णभावनामाय होगा, वह निश्चित रूप से कृष्णधाम को जाएगा जहाँ वह साक्षात् कृष्ण के सान्निध्य में रहेगा | यह गुह्यतम ज्ञान अर्जुन को इसीलिए बताया गया, क्योंकि वह कृष्ण का प्रिय मित्र (सखा) है | जो कोई भी अर्जुन के पथ का अनुसरण करता है, वह कृष्ण का प्रिय सखा बनकर अर्जुन जैसी ही सिद्धि प्राप्त कर सकता है | ये शब्द इस बात पर बल देते हैं कि मनुष्य को अपना मन उस कृष्ण पर एकाग्र करना चाहिए जो दोनों हाथों में वंशीधारण किये, सुन्दर मुखवाले तथा अपने बालों में मोर पंख धारण किये हुए साँवले बालक के रूप में हैं | कृष्ण का वर्णन ब्रह्मसंहिता तथा अन्य ग्रथों में पाया जाता है | मनुष्य को परम ईश्वर के आदि रूप कृष्ण पर अपने मन को एकाग्र करना चाहिए | उसे अपने मन को भगवान् के अन्य रूपों की ओर नहीं मोड़ना चाहिए | भगवान् के नाना रूप हैं, यथा विष्णु, नारायण,राम, वराह आदि | किन्तु भक्त को चाहिए कि अपने मन को उस एक रूप पर केन्द्रित करे जो अर्जुन के समक्ष था | कृष्ण के रूप पर मन की यह एकाग्रता ज्ञान का गुह्यतम अंश है जिसका प्रकटीकरण अर्जुन के लिए किया गया, क्योंकि वह कृष्ण का अत्यन्त प्रिय सखा है |

66.

bhaktiprasad.in

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज |
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा श्रुचः || 18.66 ||

समस्त प्रकार के धर्मों का परित्याग करो और मेरी शरण में आओ । मैं समस्त पापों से तुम्हारा उद्धार कर दूँगा । डरो मत ।

Abandon all varieties of religion and just surrender unto Me. I shall deliver you from all sinful reaction. Do not fear.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

भगवान् ने अनेक प्रकार के ज्ञान तथा धर्म की विधियाँ बताई हैं - परब्रह्म का ज्ञान, परमात्मा का ज्ञान, अनेक प्रकार के आश्रमों तथा वर्णों का ज्ञान, संन्यास का ज्ञान, अनासक्ति, इन्द्रिय तथा मन का संयम, ध्यान आदि का ज्ञान । उन्होंने अनेक प्रकार से नाना प्रकार के धर्मों का वर्णन किया है । अब, भगवद्गीता का सार प्रस्तुत करते हुए भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! अभी तक बताई गई सारी विधियों का परित्याग करके, अब केवल मेरी शरण में आओ । इस शरणागति से वह समस्त पापों से बच जाएगा, क्योंकि भगवान् स्वयं उसकी रक्षा का वचन दे रहे हैं । सातवें अध्याय में यह कहा गया था कि वही कृष्ण की पूजा कर सकता है, जो सारे पापों से मुक्त हो गया हो । इस प्रकार कोई यह सोच सकता है कि समस्त पापों से मुक्त हुए बिना कोई शरणागति नहीं पा सकता है । ऐसे सन्देह के लिए यहाँ यह कहा गया है कि कोई समस्त पापों ऐ मुक्त न भी हो तो केवल श्री कृष्ण के शरणागत होने पर स्वतः मुक्त कर दिया जाता है । पापों से मुक्त होने के लिए कठोर प्रयास करने की कोई आवश्यकता नहीं है । मनुष्य को बिना झिझक के कृष्ण को समस्त जीवों के रक्षक के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए । उसे चाहिए कि श्रद्धा तथा प्रेम से उनकी शरण ग्रहण करे । हरि भक्ति विलास में (११.६७६) कृष्ण की शरण ग्रहण करने की विधि का वर्णन हुआ है - *आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् | रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा | आत्मनिक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः ||*

तात्पर्य

भक्तियोग के अनुसार मनुष्य हो वही धर्म स्वीकार करना चाहिए, जिससे अन्ततः भगवद्भक्ति हो सके | समाज में अपनी स्थिति के अनुसार कोई एक विशेष कर्म कर सकता है, लेकिन यदि अपना कर्म करने से कोई कृष्णभावनामृत तक नहीं पहुँच पाता,तो उसके सारे कार्यकलाप व्यर्थ हो जाते हैं | जिस कर्म से कृष्णभावनामृत की पूर्णावस्था न प्राप्त हो सके उससे बचना चाहिए | मनुष्य को विश्वास होना चाहिए कि कृष्ण समस्त परिस्थितियों में उसकी सभी कठिनाइयों से रक्षा करेंगे | इसके विषय में सोचने की कोई आवश्यकता नहीं कि जीवन-निर्वाह कैसे होगा? कृष्ण इसको सँभालेंगे | मनुष्य को चाहिए कि वह अपने आप को निस्सहाय माने और अपने जीवन की प्रगति के लिए कृष्ण को ही अवलम्ब समझे | पूर्ण कृष्णभावनामृत होकर भगवद्भक्ति में प्रवृत्त होते ही वह प्रकृति के समस्त कल्मष से मुक्त हो जाता है | धर्म की विविध विधियाँ हैं और ज्ञान, ध्यानयोग आदि जैसे शुद्ध करने वाले अनुष्ठान हैं, लेकिन जो कृष्ण के शरणागत हो जाता है, उसे इतने सारे अनुष्ठानों के पालन की आवश्यकता नहीं रह जाती | कृष्ण की शरण में जाने मात्र से वह व्यर्थ समय गँवाने से बच जाएगा | इस प्रकार वह तुरन्त सारी उन्नति कर सकता है और समस्त पापों से मुक्त हो सकता है | श्रीकृष्ण की सुन्दर छवि के प्रति मनुष्य को आकृष्ट होना चाहिए | उनका नाम कृष्ण इसीलिए पड़ा, क्योंकि वे सर्वाकर्षक हैं | जो व्यक्ति कृष्ण की सुन्दर, सर्वशक्तिमान छवि से आकृष्ट होता है, वह भाग्यशाली है | अध्यात्मवादी कई प्रकार के होते हैं - कुछ निर्गुण ब्रह्म के प्रति आकृष्ट होते हैं, कुछ परमात्मा के प्रति लेकिन जो भगवान् के साकार रूप के प्रति आकृष्ट होता है और इससे भी बढ़कर जो साक्षात् भगवान् कृष्ण के प्रति आकृष्ट होता है, वह सर्वोच्च योगी है | दूसरे शब्दों में, अनन्यभाव से कृष्ण की भक्ति गुह्यतम ज्ञान है और सम्पूर्ण गीता का यही सार है | कर्मयोगी, दार्शनिक, योगी तथा भक्त सभी अध्यात्मवादी कहलाते हैं, लेकिन इनमें से शुद्धभक्त ही सर्वश्रेष्ठ है | यहाँ पर मा शुचः (मत डरो, मत झिझको, मत चिन्ता करो) विशिष्ट शब्दों का प्रयोग अत्यन्तसार्थक है | मनुष्य को यह चिन्ता होती है कि वह किस प्रकार सारे धर्मों को त्यागे और एकमात्र कृष्ण की शरण में जाए,लेकिन ऐसी चिन्ता व्यर्थ है |

67.

bhaktiprasad.in

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन |
न चाश्रुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति || 18.67 ||

यह गुह्यज्ञान उनको कभी भी न बताया जाय जो न तो संयमी हैं, न एकनिष्ठ, न भक्ति में रत हैं, न ही उसे जो मुझसे द्वेष करता हो |

This confidential knowledge may not be explained to those who are not austere, or devoted, or engaged in devotional service, nor to one who is envious of Me.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

जिन लोगों ने तपस्यामय धार्मिक अनुष्ठान नहीं किये, जिन्होंने कृष्णभावनामृत में भक्ति का कभी प्रयत्न नहीं किया, जिन्होंने किसी शुद्धभक्त की सेवा नहीं की तथा विशेषतया जो लोग कृष्ण को केवल ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं, या जो कृष्ण की महानता से द्वेष रखते हैं, उन्हें यह परम गुह्यज्ञान नहीं बताना चाहिए | लेकिन कभी-कभी यह देखा जाता है कि कृष्ण से द्वेष रखने वाले आसुरी पुरुष भीकृष्ण की पूजा भिन्न प्रकार से करते हैं और व्यवसाय चलाने के लिए भगवद्गीता का प्रवचन करने का धंधा अपना लेते हैं |लेकिन जो सचमुच कृष्ण को जानने का इच्छुक हो उसे भगवद्गीता के ऐसे भाष्यों से बचना चाहिए | वास्तव में कामी लोग भगवद्गीता के प्रयोजन को नहीं समझ पाते | यदि कोई कामी भी न हो और वैदिक शास्त्रों द्वारा आदिष्ट नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करता हो, लेकिन यदि वह भक्त नहीं है, तो वह कृष्ण को नहीं समझ सकता | और यदि वह अपने को कृष्णभक्त बताता है, लेकिन कृष्णभावनाभावित कार्यकलापों में रत नहीं रहता, तब भी वह कृष्ण को नहीं समझ पाता | ऐसे बहुत से लोग हैं, जो भगवान् से इसलिए द्वेष रखते हैं, क्योंकि उन्होंनेभगवद्गीता में कहा है कि वे परम हैं और कोई न तो उनसे बढ़कर, न उनके समान है | ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं, जो कृष्ण से द्वेषरखते हैं | ऐसे लोगों को भगवद्गीता नहीं सुनाना चाहिए, क्योंकि वे उसे समझ नहीं पाते | श्रद्धाविहीन लोग भगवद्गीतातथा कृष्ण को नहीं समझ पाएँगे | शुद्धभक्त से कृष्ण को समझे बिना किसी को भगवद्गीता की टीका करने का साहस नहीं करना चाहिए |

68-69.

bhaktiprasad.in

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति |
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः || 18.68 ||

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः |
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि || 18.69 ||

जो व्यक्ति भक्तों को यह परम रहस्य बताता है, वह शुद्ध भक्ति को प्राप्त करेगा और अन्त में वह मेरे पास वापस आएगा |

18.68: For one who explains the supreme secret to the devotees, devotional service is guaranteed, and at the end he will come back to Me.

18.69: There is no servant in this world more dear to Me than he, nor will there ever be one more dear.

Designed by DigitalWebdia.com

bhaktiprasad.in

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः |
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः || 18.70 ||

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः |
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् || 18.71 ||

और मैं घोषित करता हूँ कि जो हमारे इस पवित्र संवाद का अध्ययन करता है, वह अपनी बुद्धि से मेरी पूजा करता है |

18.70: And I declare that he who studies this sacred conversation worships Me by his intelligence.

18.71: And one who listens with faith and without envy becomes free from sinful reaction and attains to the planets where the pious dwell.

Designed by DigitalWebdia.com

bhaktiprasad.in

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा |
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रणष्टस्ते धनञ्जय || 18.72 ||

हे पृथापुत्र ! हे धनञ्जय ! क्या तुमने इसे (इस शास्त्र को) एकाग्र चित्त होकर सुना ? और क्या अब तुम्हारा अज्ञान तथा मोह दूर हो गया है ?

O conqueror of wealth, Arjuna, have you heard this attentively with your mind? And are your illusions and ignorance now dispelled?

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

भगवान् अर्जुन के गुरु का काम कर रहे थे | अतएव यह उनका धर्म था कि अर्जुन से पूछते कि उसने पूरी भगवद्गीता ढंग से समझ ली है या नहीं | यदि नहीं समझी है, तो भगवान् उसे फिर से किसी अंश विशेष या पूरी भगवद्गीता बताने को तैयार हैं | वस्तुतः जो भी व्यक्ति कृष्ण जैसे प्रामाणिक गुरु या उनके प्रतिनिधि से भगवद्गीता सुनता है, उसका सारा अज्ञान दूर हो जाता है | भगवद्गीता कोई सामान्य ग्रंथ नहीं, जिसे किसी कवि या उपन्यासकार ने लिखा हो, इसे साक्षात् भगवान् ने कहा है | जो भाग्यशाली व्यक्ति इन उपदेशों को कृष्ण से या उनके किसी प्रामाणिक आध्यात्मिक प्रतिनिधि से सुनता है, वह अवश्य ही मुक्त पुरुष बनकर अज्ञान के अंधकार को पार कर लेता है |

bhaktiprasad.in

अर्जुन उवाच |

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत |
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव || 18.73 ||

अर्जुन ने कहा – हे कृष्ण, हे अच्युत ! अब मेरा मोह दूर हो गया | आपके अनुग्रह से मुझे मेरी स्मरण शक्ति वापस मिल गई | अब मैं संशयरहित तथा दृढ़ हूँ और आपके आदेशानुसार कर्म करने के लिए उद्यत हूँ |

Arjuna said, My dear Krsna, O infallible one, my illusion is now gone. I have regained my memory by Your mercy, and I am now firm and free from doubt and am prepared to act according to Your instructions.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

इस श्लोक में मोह शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है | मोह ज्ञान का विरोधी होता है | वास्तविक ज्ञान तो यह समझना है कि प्रत्येक जीव भगवान् का शाश्वत सेवक है | लेकिन जीव अपने को इस स्थिति में न समझकर सोचता है कि वह सेवक नहीं, अपितु इस जगत् का स्वामी है , क्योंकि वह प्रकृति पर प्रभुत्व जताना चाहता है | यह मोह भगवत्कृपा से या शुद्ध भक्त की कृपा से जीता जा सकता है | इस मोह के दूर होने पर मनुष्य कृष्णभावनामृत में कर्म करने के लिए राजी हो जाता है | कृष्ण के आदेशानुसार कर्म करना कृष्णभावनामृत है | बद्धजीव माया द्वारा मोहित होने के कारण यह नहीं जान पाता कि परमेश्वर स्वामी हैं, जो ज्ञानमय हैं और सर्वसम्पत्तिवान हैं | वे अपने भक्तों को जो कुछ चाहे दे सकते हैं | वे सब के मित्र हैं और भक्तों पर विशेष कृपालु रहते हैं | वे प्रकृति तथा समस्त जीवों के अधीक्षक हैं | वे अक्षय काल के नियन्त्रक हैं और समस्त ऐश्वर्यों एवं शक्तियों से पूर्ण हैं | भगवान् भक्त को आत्मसमर्पण भी कर सकते हैं | जो उन्हें नहीं जानता वह मोह के वश में है, वह भक्त नहीं बल्कि माया का सेवक बन जाता है | लेकिन अर्जुन भगवान् से भगवद्गीता सुनकर समस्त मोह से मुक्त हो गया | वह यह समझ गया कि कृष्ण केवल उसके मित्र ही नहीं बल्कि भगवान् हैं और वह कृष्ण को वास्तव में समझ गया | अतएव भगवद्गीता का पाठ करने का अर्थ है कृष्ण को वास्तविकता के साथ जानना | जब व्यक्ति को पूर्ण ज्ञान होता है , तो वह स्वभावतः कृष्ण को आत्मसमर्पण करता है | जब अर्जुन समझ गया कि यह तो जनसंख्या की अनावश्यक वृद्धि को कम करने के लिए कृष्ण की योजना थी, तो उसने कृष्ण की इच्छानुसार युद्ध करना स्वीकार कर लिया | उसने पुनः भगवान् के आदेशानुसार युद्ध करने के लिए अपना धनुष-बाण ग्रहण कर लिया |

तात्पर्य

जीव जिसका प्रतिनिधित्व अर्जुन कर रहा है, उसका स्वरूप यह है कि वह परमेश्वर के आदेशानुसार कर्म करे | वह आत्मानुशासन (संयम) के लिए बना है | श्रीचैतन्य महाप्रभु का कहना है कि जीव का स्वरूप परमेश्वर के नित्य दास के रूप में है | इस नियम को भूल जाने के कारण जीव प्रकृति द्वारा बद्ध हो जाता है | लेकिन परमेश्वर की सेवा करने से वह ईश्वर का मुक्त दास बनता है | जीव का स्वरूप सेवक के रूप में हैं | उसे माया या परमेश्वर में से किसी एक की सेवा करनी होती है | यदि वह परमेश्वर की सेवा करता है, तो वह अपनी सामान्य स्थिति में रहता है | लेकिन यदि वह बाह्यशक्ति माया की सेवा करना पसन्द करता है, तो वह निश्चित रूप से बन्धन में पड़ जाता है | इस भौतिक जगत् में जीव मोहवश सेवा कर रहा है | वह काम तथा इच्छाओं से बँधा हुआ है, फिर भी वह अपने को जगत् का स्वामी मानता है | यही मोह कहलाता है | मुक्त होने पर पुरुष का मोह दूर हो जाता है और वह स्वेच्छा से भगवान् की इच्छानुसार कर्म करने के लिए परमेश्वर की शरण ग्रहण करता है | जीव को फाँसने का माया का अन्तिम पाश यह धारणा है कि वह ईश्वर है | जीव सोचता है कि अब वह बद्धजीव नहीं रहा, अब तो वह ईश्वर है | वह इतना मुर्ख होता है कि वह यह नहीं सोच पाता कि यदि वह ईश्वर होता तो इतना संशयग्रस्त क्यों रहता | वह इस पर विचार नहीं करता | इसलिए यही माया का अन्तिम पाश होता है | वस्तुतः माया से मुक्त होना भगवान् श्रीकृष्ण को समझना है और उनके आदेशानुसार कर्म करने के लिए सहमत होना है |

bhaktiprasad.in

सञ्जय उवाच |

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः |
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् || 18.74 ||

अर्जुन ने कहा – हे कृष्ण, हे अच्युत ! अब मेरा मोह दूर हो गया | आपके अनुग्रह से मुझे मेरी स्मरण शक्ति वापस मिल गई | अब मैं संशयरहित तथा दृढ़ हूँ और आपके आदेशानुसार कर्म करने के लिए उद्यत हूँ |

Sañjaya said: Thus have I heard the conversation of two great souls, Krshna and Arjuna. And so wonderful is that message that my hair is standing on end.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

भगवद्गीता के प्रारम्भ में धृतराष्ट्र ने अपने मन्त्री संजय से पूछा था "कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में क्या हुआ?" गुरु व्यासदेव की कृपा से संजय के हृदय में सारी घटना स्फुरित हुई थी | इस प्रकार उसने युद्धस्थल की विषय वस्तु कह सुनाई थी | यह वार्ता आश्चर्यप्रद थी, क्योंकि इसके पूर्व दो महापुरुषों के बीच ऐसी महत्त्वपूर्ण वार्ता कभी नहीं हुई थी और न भविष्य में पुनः होगी | यह वार्ता इसलिए आश्चर्यप्रद थी, क्योंकि भगवान् भी अपने तथा अपनी शक्तियों के विषय में जीवात्मा अर्जुन से वर्णन कर रहे थे, जो परम भगवद्भक्त था | यदि हम कृष्ण को समझने के लिए अर्जुन का अनुसरण करें तो हमारा जीवन सुखी तथा सफल हो जाए | संजय ने इसका अनुभव किया और जैसे-जैसे उसकी समझ में आता गया उसने यह वार्ता धृतराष्ट्र से कह सुनाई | अब यह निष्कर्ष निकला कि जहाँ-जहाँ कृष्ण तथा अर्जुन हैं, वहीं-वहीं विजय होती है |

bhaktiprasad.in

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् |
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् || 18.75 ||

व्यास की कृपा से मैंने ये परम गुह्य बातें साक्षात् योगेश्वर कृष्ण के मुख से अर्जुन के प्रति कही जाती हुई सुनीं ।

By the mercy of Vyāsa, I have heard these most confidential talks directly from the master of all mysticism, Krsna, who was speaking personally to Arjuna.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

व्यास संजय के गुरु थे और संजय स्वीकार करते हैं कि व्यास की कृपा से ही वे भगवान् को समझ सके । इसका अर्थ यह हुआ कि गुरु के माध्यम से ही कृपा को समझना चाहिए, प्रत्यक्ष रूप से नहीं । गुरु स्वच्छ माध्यम है, यद्यपि अनुभव फिर भी प्रत्यक्ष ही होता है । गुरु-परम्परा का यही रहस्य है । जब गुरु प्रामाणिक हो तो भगवद्गीता का प्रत्यक्ष श्रवण किया जा सकता है,जैसा अर्जुन ने किया । संसार भर में अनेक योगी हैं, लेकिन कृष्ण योगेश्वर हैं | उन्होंने भगवद्गीता में स्पष्ट उपदेश दिया है, "मेरी शरण में आओ | जो ऐसा करता है वह सर्वोच्च योगी है |" छठे अध्याय के अन्तिम श्लोक में इसकी पुष्टि हुई है – योगिनाम् अपि सर्वेषाम् | नारद कृष्ण के शिष्य हैं और व्यास के गुरु | अतएव व्यास अर्जुन के ही समान प्रामाणिक हैं, क्योंकि वे गुरु-परम्परा में आते हैं और संजय व्यासदेव के शिष्य हैं | अतएव व्यास की कृपा से संजय की इन्द्रियाँ विमल हो सकीं और वे कृष्ण का साक्षात् दर्शन कर सके तथा उनकी वार्ता सुन सके | जो व्यक्ति कृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन करता है, वह इस गुह्यज्ञान को समझ सकता है | यदि वह गुरु-परम्परा में नहीं होता तो वह कृष्ण की वार्ता नहीं सुन सकता | अतएव उसका ज्ञान सदैव अधुरा रहता है, विशेषतया जहाँ तक भगवद्गीता समझने का प्रश्न है | भगवद्गीता में योग की समस्त पद्धतियों का – कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग का वर्णन हुआ है | श्रीकृष्ण इन समस्त योगों के स्वामी हैं |

तात्पर्य

लेकिन यह समझ लेना चाहिए कि जिस तरह अर्जुन कृष्ण को प्रत्यक्षतः समझ सकने के लिए भाग्यशाली था, उसी प्रकार व्यासदेव की कृपा से संजय भी कृष्ण को साक्षात् सुनने में समर्थ हो सका | वस्तुतः कृष्ण से प्रत्यक्षतः सुनने एवं व्यास जैसे गुरु के माध्यम से प्रत्यक्ष सुनने में कोई अन्तर नहीं है | गुरु भी व्यासदेव का प्रतिनिधि होता है | अतएव वैदिक पद्धति के अनुसार अपने गुरु के जन्मदिन पर शिष्यगण व्यास पूजा नामक उत्सव रचाते हैं |

76.

bhaktiprasad.in

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् |
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहु || 18.76 ||

हे राजन्! जब मैं कृष्ण तथा अर्जुन के मध्य हुई इस आश्चर्यजनक तथा पवित्र वार्ता का बारम्बार स्मरण करता हूँ, तो प्रति क्षण आह्लाद से गद्गद् हो उठता हूँ |

O King, as I repeatedly recall this wondrous and holy dialogue between Krsna and Arjuna, I take pleasure, being thrilled at every moment.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

भगवद्गीता का ज्ञान इतना दिव्य है कि जो भी अर्जुन तथा कृष्ण के संवाद को जान लेता है, वह पुण्यत्मा बन जाता है और इस वार्तालाप को भूल नहीं सकता | आध्यात्मिक जीवन की यह दिव्य स्थिति है | दूसरे शब्दों में, जब कोई गीता को सही स्त्रोत से अर्थात् प्रत्यक्षतः कृष्ण से सुनता है, तो उसे पूर्ण कृष्णभावनामृत प्राप्त होता है | कृष्णभावनामृत का फल यह होता है कि वह अत्यधिक प्रबद्ध हो उठता है और जीवन का भोग आनन्द सहित कुछ काल तक नहीं, अपितु प्रत्येक क्षण करता है |

77.

bhaktiprasad.in

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः |
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः || 18.77 ||

हे राजन्! भगवान् कृष्ण के अद्भुत रूप का स्मरण करते ही मैं अधिकाधिक आश्चर्यचकित होता हूँ और पुनःपुनः हर्षित होता हूँ |

O King, when I remember the wonderful form of Lord K□□□a, I am struck with even greater wonder, and I rejoice again and again.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

ऐसा प्रतीत होता है कि व्यास की कृपा से संजय ने भी अर्जुन को दिखाये गये कृष्ण के विराट रूप को देखा था | निस्सन्देह यह कहा जाता है कि इसके पूर्व भगवान् कृष्ण ने कभी ऐसा रूप प्रकट नहीं किया था | यह केवल अर्जुन को दिखाया गया था, लेकिन उस समय कुछ महान भक्त भी उसे देख सके तथा व्यास उनमें से एक थे | वे भगवान् के परम भक्तों में से हैं और कृष्ण के शक्त्यावेश अवतार माने जाते हैं | व्यास ने इसे अपने शिष्य संजय के समक्ष प्रकट किया जिन्होंने अर्जुन को प्रदर्शित किये गये कृष्ण के उस अद्भुत रूप को स्मरण रखा और वे बारम्बार उसका आनन्द उठा रहे थे |

78.

bhaktiprasad.in

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः |
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवो नीतिर्मतिर्मम || 18.78 ||

जहाँ योगेश्वर कृष्ण है और जहाँ परम धनुर्धर अर्जुन हैं, वहीँ ऐश्वर्य, विजय, अलौकिक शक्ति तथा नीति भी निश्चित रूप से रहती है | ऐसा मेरा मत है |

Wherever there is Krsna, the master of all mystics, and wherever there is Arjuna, the supreme archer, there will also certainly be opulence, victory, extraordinary power, and morality. That is my opinion.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

भगवद्गीता का शुभारम्भ धृतराष्ट्र की जिज्ञासा से हुआ | वह भीष्म, द्रोण तथा कर्ण जैसे महारथियों की सहायता से अपने पुत्रों की विजय के प्रति आशावान था | उसे आशा थी कि विजय उसके पक्ष में होगी | लेकिन युद्धक्षेत्र के दृश्य का वर्णन करने के बाद संजय ने राजा से कहा "आप अपनी विजय की बात सोच रहें हैं, लेकिन मेरा मत है कि जहाँ कृष्ण तथा अर्जुन उपस्थित हैं, वहीँ सम्पूर्ण श्री होगी |" उसने प्रत्यक्ष पुष्टि की कि धृतराष्ट्र को अपने पक्ष की विजय की आशा नहीं रखनी चाहिए | विजय तो अर्जुन के पक्ष की निश्चित है, क्योंकि उसमें कृष्ण हैं | श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन के सारथी का पद स्वीकार करना एक ऐश्वर्य का प्रदर्शन था | कृष्ण समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं और इनमें से वैराग्य एक है | ऐसे वैराग्य के भी अनेक उदाहरण हैं, क्योंकि कृष्ण वैराग्य के भी ईश्वर हैं | युद्ध तो वास्तव में दुर्योधन तथा युधिष्ठिर के बीच था | अर्जुन अपने ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर की ओर से लड़ रहा था | चूँकि कृष्ण तथा अर्जुन युधिष्ठिर की ओर थे अतएव युधिष्ठिर की विजय ध्रुव थी | युद्ध को यह निर्णय करना था कि संसार पर शासन कौन करेगा | संजय ने भविष्यवाणी की कि सत्ता युधिष्ठिर के हाथ में चली जाएगी |

तात्पर्य

यहाँ पर इसकी भी भविष्यवाणी हुई है कि इस युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद युधिष्ठिर उत्तरोत्तर समृद्धि करेंगे, क्योंकि वे न केवल पुण्यात्मा तथा पवित्रात्मा थे, अपितु वे कठोर नीतिवादी थे | उन्होंने जीवन भर कभी असत्य भाषण नहीं किया था | ऐसे अनेक अल्पज्ञ व्यक्ति हैं, जो भगवद्गीता को युद्धस्थल में दो मित्रों की वार्ता के रूप में ग्रहण करते हैं | लेकिन इससे ऐसा ग्रंथ कभी शास्त्र नहीं बन सकता | कुछ लोग विरोध कर सकते हैं कि कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध करने के लिए उकसाया, जो अनैतिक है, लेकिन वास्तविकता तो यह है कि भगवद्गीता नीति का परम आदेश है | यह नीति विषयक आदेश नवें अध्याय के चौंतीसवें श्लोक में है – मन्मना भव मद्भक्तः| मनुष्य को कृष्ण का भक्त बनना चाहिए और सारे धर्मों का सार है – कृष्ण की शरणागति (सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज) | भगवद्गीता का आदेश धर्म तथा नीति की परम विधि है | अन्य सारी विधियाँ भले ही शुद्ध करने वाली तथा इस विधि तक ले जाने वाली हों, लेकिन गीता का अन्तिम सन्देश समस्त नीतियों तथा धर्मों का सार वचन है – कृष्ण की शरण ग्रहण करो या कृष्ण को आत्मसमर्पण करो | यह अठारहवें अध्याय का मत है |

तात्पर्य

भगवद्गीता से हम यह समझ सकते हैं कि ज्ञान तथा ध्यान द्वारा अपनी अनुभूति एक विधि है, लेकिन कृष्ण की शरणागति सर्वोच्च सिद्धि है | यह भगवद्गीता के उपदेशों का सार है | वर्णाश्रम धर्म के अनुसार अनुष्ठानों (कर्मकाण्ड) का मार्ग, ज्ञान का गुह्य मार्ग हो सकता है | लेकिन धर्म के अनुष्ठान के गुह्य होने पर भी ध्यान तथा ज्ञान गुह्यतर हैं तथा पूर्ण कृष्णभावनाभावित होकर भक्ति में कृष्ण की शरणागति गुह्यतम उपदेश है | यही अठारहवें अध्याय का सार है | भगवद्गीता की अन्य विशेषता यह है कि वास्तविक सत्य भगवान् कृष्ण हैं | परम सत्य की अनुभूति तीन रूपों में होती है – निर्गुण ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा भगवान् श्रीकृष्ण | परम सत्य के पूर्ण ज्ञान का अर्थ है, कृष्ण का पूर्ण ज्ञान | यदि कोई कृष्ण को जान लेता है तो ज्ञान के सारे विभाग इसी ज्ञान के अंश हैं | कृष्ण दिव्य हैं क्योंकि वे अपनी नित्य अन्तरंगा शक्ति में स्थित रहते हैं | जीव उनकी शक्ति से प्रकट हैं और दो श्रेणी के होते हैं – नित्यबद्ध तथा नित्यमुक्त | ऐसे जीवों की संख्या असंख्य है और वे सब कृष्ण के मूल अंश माने जाते हैं | भौतिक शक्ति २४ प्रकार से प्रकट होती है | सृष्टि शाश्वत काल द्वारा प्रभावित है और बहिरंगाशक्ति द्वारा इसका सृजन तथा संहार होता है |

तात्पर्य

यह दृश्य जगत पुनःपुनः प्रकट तथा अप्रकट होता रहता है | भगवद्गीता में पाँच प्रमुख विषयों की व्याख्या की गई है – भगवान्, भौतिक प्रकृति, जीव, शाश्वतकाल तथा सभी प्रकार के कर्म | सब कुछ भगवान् कृष्ण पर आश्रित है | परमसत्यत की सभी धारणाएँ – निराकार ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा अन्य दिव्य अनुभूतियाँ – भगवान् के ज्ञान की कोटि में सन्निहित हैं | यद्यपि ऊपर से भगवान्, जीव, प्रकृति तथा काल भिन्न प्रतीत होते हैं, लेकिन ब्रह्म से कुछ भी भिन्न नहीं है | लेकिन ब्रह्म सदैव समस्त वस्तुओं से भिन्न है | भगवान् चैतन्य का दर्शन है "अचिन्त्यभेदाभेद" | यह दर्शन पद्धति परमसत्य के पूर्णज्ञान से युक्त है | जीव अपने मूलरूप में शुद्ध आत्मा है | वह परमात्मा का एक परमाणु मात्र है | इस प्रकार भगवान् कृष्ण की उपमा सूर्य से दी जा सकती है और जीवों की सूर्यप्रकाश से | चूँकि सारे जीव कृष्ण की तटस्था शक्ति हैं, अतएव उनका संसर्ग भौतिक शक्ति (अपरा) या आध्यात्मिक शक्ति (परा) से होता है | दूसरे शब्दों में, जीव भगवान् की पराशक्ति से है, अतएव उसमें किंचित् स्वतन्त्रता रहती है | इस स्वतन्त्रता के सदुपयोग से ही वह कृष्ण के प्रत्यक्ष आदेश के अन्तर्गत आता है | इस प्रकार वह ह्लादिनी शक्ति की अपनी सामान्य दशा को प्राप्त होता है |

हरे कृष्ण

|| इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय

"उपसंहार-संन्यास की सिद्धि"

का तात्पर्य पूर्ण हुआ ||

निताई गौर हरी बोल

DigitalWebdia